सुधा बीज बोने से पहले, कालकूट पीना होगा।
पहन मौत का मुकट, विश्व-हित मानव को जीना होगा॥

भाग २] मथुरा, २० मई सन् १९४१ [अंक ५
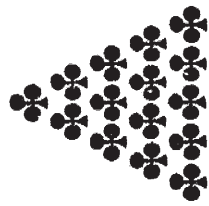
तप—संगीत

(श्री महादेव झा 'सुदेव')
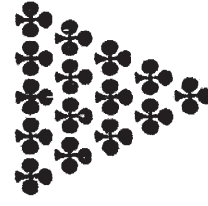
क्यों न दुख-विष घूंट पी, सुख की सुधा धारा बहाऊं?
ग्रीष्म को कर सिक्त जल से, स्वेद कण से मैं नहाऊं॥
यंत्रणा, दुख, ताड़ना तो, आत्म-सुख के हेतु ही हैं।
प्राण के संघर्ष भी तो, पूर्णता के केतु ही हैं॥
क्या न कंटक बीच पाटल, झूमता खुश हो पवन में?
क्या न सुन्दर चन्द्र हँसता, नील तम पूरित गगन में?
क्यों न फिर इस जग रुदन में, हास का संगीत गाऊँ?
क्यों न दुख विष घूंट पी, सुख की सुधा धारा बहाऊँ?
विषम पतझड़ से सुखद, निर्माण मधु-ऋतु का हुआ है।
बीज के संहार पर, शृंगार पतझड़ का हुआ है॥
ग्रीष्म का उत्ताप ही है, हेतु इस वर्षा सुखद का।
है तपस्या में निहित, वरदान ही तो उस वरद का॥
क्यों न पावस की अमा पर, चांदनी का हास पाऊँ?
क्यों न दुख-विष घूंट पी, सुख की सुधा धारा बहाऊँ?

सुधा बीज बोने से पहले, काल कूट पीना होगा।
पहिन मौतका मुकट, विश्व-हित मानवको जीना होगा॥

मथुरा, २० मई सन् १९४१

ईश्वर से माँगिए।

कई लोग समझते हैं कि ईश्वर केवल निस्वार्थ भक्ति करने योग्य तत्व है। अत्यन्त उच्च और मोक्ष प्राप्त करने की दृष्टि से यह ठीक भी है, क्योंकि किसी से कुछ न माँगना यहाँ तक कि परमात्मा से भी कुछ न माँगना परम सन्तोष प्राप्त करने का अभ्यास करना है। ऐसे अभ्यास से जीव संसार से विरक्त होता जाता है और अपने अन्दर ही आत्म सन्तोष प्राप्त करता हुआ परम तत्व में लीन हो जाता है। यह हुई ऊँची कक्षा; परन्तु ऊँची कक्षा का अभ्यास ऊँची दशा का है। जब हम आत्म ज्ञान की भूमिका में आगे बढ़ चलें, तो अवश्य ही अयाचक बन जाना चाहिए। साधारण या आरंभिक स्थिति में ऐसा नहीं हो सकता। लोक व्यवहार में माँगना और देना दोनों ही एक सी वस्तुऐं हैं। हमारे दारवाजे पर जब कोई अतिथि या भिक्षुक आता है, तो उसे देते हैं, देते समय किसी प्रकार का भय संकोच नहीं होता और न लज्जा ही आती है, क्योंकि दूसरे लोगों के पास जिन वस्तुओं का अभाव है, उन्हें वह वस्तु देने में कुछ भी बुराई प्रतीत नहीं होती, बल्कि अपना कर्तव्य पालन करने के कारण प्रसन्नता होती है; किन्तु किसी से माँगते समय ऐसी स्थिति नहीं रहती। जब हम स्वयं भिक्षुक की तरह किसी से कुछ माँगने जाते हैं, तो बड़ी लज्जा आती है, हाथ पसारते समय बड़ा संकोच होता है और याचना के साथ साथ अपने अन्दर परास्त होने, दीन होने के विचार उदय होते हैं। तुम जानते हो कि देने और लेने में इस प्रकार का अन्तर होने का कारण क्या है? कारण यह है, देते समय किसी हद तक हम अपने को देने में समर्थ समझते हैं और विश्वास करते हैं कि हमारे अन्दर देने की योग्यता है। इससे आत्मोदय होता है और प्रसन्नता बढ़ती है, किन्तु यदि कोई याचक माँगने आवे और तुम्हारी देने की सामर्थ्य न हो, तो भी भय, लज्जा और दीनता के भाव तुम्हारे मन में उठेंगे और अपनी अशक्ति पर दुःख प्रकट करोगे। तात्पर्य यह है कि देने और लेने की क्रियाओं में जो भलाई, बुराई है वह सामर्थ्य और असमर्थता के कारण हैं।

माँगने में लज्जा इसलिए आती है कि हमारा गुप्त मन जानता है कि जिसके आगे हम हाथ फैलावेंगे, उसमें उतनी सामर्थ्य न होगी। यदि वस्तु उसके पास है तो भी अनुदारता या लोभ वृत्ति के कारण वह अपाहिज बन रहा होगा और शायद हमें न दे या कम दे। दूसरे उसके पास जरूरत भर ही वस्तुऐं हुईं, तो देने में उसे कष्ट होगा। लेने और माँगने में लज्जा, संकोच, दीनता और अधर्म मानने का असली हेतु यही है। जहाँ देने योग्य वस्तु की प्रचुरता होती है और उदारता का पता लगता है, वहाँ से लेने में कुछ भी संकोच नहीं है। लेने से अपनी जरूरतें पूरी होती हैं। इससे सुख मिलता है, देने की अपेक्षा लेना सब को प्रिय होता है, परन्तु लेने में जो लज्जा आती है, वह और किसी कारण नहीं, केवल देने वाले की असमर्थता के कारण ही होती है। गर्मी के दिनों में दूसरों के लगाये हुए बगीचों में आराम करते हैं, दान से चलने वाली प्याऊ पर पानी पीते हैं। धर्मशालाओं में ठहरते हैं, निःशुल्क वाचनालय में अखबार, पुस्तकें पढ़ते हैं। इसमें किसी को लज्जा या संकोच नहीं होता, क्योंकि

हम जानते हैं कि इससे देने वाले को कोई कष्ट नहीं होगा और वह इन चीजों को देने में समर्थ है।

हमें तरह २ की जरूरतें रोज रहती हैं। कई झूठी और तृष्णा के कारण होती हैं। पर कई सच्ची और वास्तविक भी होती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ईश्वर से याचना करनी चाहिये, क्यों कि वह देने में समर्थ है, उसके पास सब कुछ है और तुम्हें थोड़ा सा दे देने पर उसके भंडार में कुछ भी कमी नहीं आती। असमर्थता और अनुदारता भी ईश्वर में नहीं है। फिर ईश्वर से माँगने में क्या हर्ज है? बच्चे को जिस चीज की जरूरत होती है, उसे बाहर के व्यक्तियों से न माँग कर केवल माता से ही माँगता है, क्यों कि वह जानता है कि माता दे देगी। ईश्वर हर घड़ी हमें देता है। जरा ध्यान पूर्वक देखें और शान्त चित्त से विचार करें, तो हमारे पास जितनी वस्तुऐं, धन सम्पदा आदि है, वह ईश्वर का ही दिया हुआ मालूम पड़ेगा। क्यों कि अपने प्रयत्न से तो हम कोट का एक बटन भी नहीं बना सकते, जलाने के लिए एक वृक्ष भी नहीं उत्पन्न कर सकते, फिर हवा, पानी, भोजन एवं आनन्द की असीम वस्तुओं का तो कहना ही क्या? एक पैसा देने वाले को दानी समझा जाता है, तब जो बिना माँगे ऐसी—ऐसी वस्तुऐं प्रचुर परिमाण में देता है, जिसका एक एक कण करोड़ों रुपये की कीमत का हो सकता है, उसे तो बहुत ही बड़ा दानी मानना चाहिए। ऐसे दानी के दरबार में हम क्यों खाली हाथ खड़े रहें, जब सभी लोग अपनी इच्छानुसार माल खजाना उसके भण्डार में से बिना रोक टोक ले रहे हैं, तो हम ही क्यों अभावों से दुःखी रहें?

वेदों का आधा भाग ऐसे मन्त्रों से भरा हुआ है, जिससे बल, बुद्धि, विद्या, धन, सन्तान, सुख, सौभाग्य आदि के लिए ईश्वर से याचना की गई है। प्रार्थना या उपासना में सब लोग अपनी इच्छानुसार कुछ न कुछ माँगते हैं। फिर क्या कारण है कि हम अपनी जरूरत की वस्तुओं को उससे न माँगें?

यहाँ एक सन्देह उत्पन्न होता है कि क्या ईश्वर यह वस्तुऐं दे सकता है या देगा? शास्त्रों के पन्ने—पन्ने पर इसका उत्तर लिखा हुआ है। रावण, कुम्भकर्ण, हिरण्यकश्यप, भस्मासुर आदि असुरों ने भी जब माँगा था, तो उन्हें मिला था। पार्वती ने तो आग्रह पूर्वक शंकर जैसे योगी और काम के शत्रु को पति रूप में प्राप्त कर लिया था। तपस्या से प्राचीन काल में कितने ही लोगों ने अनेक प्रकार के वरदान प्राप्त किये थे और आज भी प्राप्त करते देखे जाते हैं। ईश्वर को विशेष रूप से प्रसन्न करके विशेष प्रकार की वस्तुऐं मिलती हैं। तपस्या ईश्वर की सब से प्रिय वस्तु है, जो इस भेंट से उन्हें प्रसन्न कर लेता है, उसे वे खजाने की ताली दे देते हैं कि इसमें से तुम्हें जिस वस्तु की जितनी आवश्यकता हो ले जाओ।

भौतिक शास्त्र के अन्वेषक, जड़ विज्ञान शास्त्र के उपासक, वैज्ञानिक कहते हैं कि ईश्वर कोई वस्तु नहीं है, प्रकृति का सब काम अपने आप होता है। प्रकृति किसी के साथ में कोई रिआयत नहीं कर सकती, वह नियम बद्ध है, नियम तोड़कर वह कोई काम नहीं करती। लेकिन वे दूसरे ही क्षण मनोविज्ञान का विवेचन करते हुए बताते हैं कि जिस वस्तु की हम बार बार याचना करते हैं—विशेष इच्छा करते हैं, उसके लिए मस्तिष्क में एक प्रकार का घर्षण होता है और एक चुम्बक शक्ति ऐसी पैदा होती है, जो इच्छित पदार्थ के सूक्ष्म परमाणुओं को अनन्त आकाश में से अपनी ओर आकर्षित करती है। यदि हृदय में उत्कट इच्छा है और मन में अन्य प्रकार के विचार नहीं आते एवं एकाग्रता पूर्वक उसी सम्बन्ध की विचार लहरें उठती रहती हैं तो यह आकर्षण इतना प्रबल हो जाता है कि वह पदार्थ खिंचते हुए बहुत तीव्र गति से निकट आजाते हैं और सफलता मिल जाती है।

हमें वैज्ञानिकों से भी लड़ाई मोल नहीं लेनी है, क्यों कि वे भी हमारी सब बातों पर पूर्णतः सहमत हैं। अन्तर केवल शब्दों का है। 'प्रार्थना' के लिए

यदि वे तीव्र इच्छा शब्द का उपयोग करते हैं और 'तपस्या' को वे 'ऐकाग्रता' कहते हैं, तो यह केवल शब्दों का ही तो अन्तर हुआ! बात एक ही है-अर्थ एक ही है। हम प्रार्थना करें—सच्चे हृदय से चाहें, तपस्या करें—एकाग्रता पूर्वक प्रयत्न करें, तो हमारे समस्त अभाव मिट सकते हैं। हमारी सच्ची कामनाऐं पूरी हो सकती हैं।

कागज की मँहगाई।

अक्सर हमारे पास पाठकों के ऐसे पत्र आते रहते हैं, जिनमें अखंड ज्योति के पृष्ठ बढ़ाने और अच्छा कागज लगाने की सलाह होती है। उन्हें कागज की मँहगाई के सम्बन्ध में साप्ताहिक स्वराज्य के २२ अप्रेल के अङ्क में प्रकाशित एक विज्ञप्ति से कुछ अनुभव हो जायेगा। वह विज्ञप्ति यह है—

पाठकों से प्रार्थना।

अखबारी कागज का भाव लगातार बढ़ता जा रहा है। जो कागज लड़ाई के पहिले ३।।।) रु० रिम के हिसाब से आता था, उसकी कीमत अब १५) रु० फी रिम हो गई है। पिछले दो महिनों में यह कीमत बहुत ज्यादा बढ़ गई है। यूरुप से अखबारी कागज का आना बन्द हो चुका है। कैनेडा और अमरीका से आने वाले कागज पर नियन्त्रण है। विदेश से माल लाने की सुविधाऐं भी नहीं हैं। ऐसी हालत में यदि हमें 'स्वराज्य' की पृष्ठ संख्या और अधिक कम करने के लिए विवश होना पड़े, तो पाठक निबाह लें।

—मैनेजर 'स्वराज्य' कार्यालय, खंडवा।

इस विज्ञप्ति के बाद इन दिनों दो आना रुपया और मँहगाई आगई है! इस प्रकार कागज का मूल्य पाँच गुना चढ़ गया है। पहले यदि १००) रु० का कागज लगता था, तो अब उसके लिए ही ५००) रु. देने पड़ते हैं। इस पर भी कागज मिलता नहीं। इस मँहगाई की वजह से अनेक पत्र बन्द हो गये, अनेक ने पृष्ठ घटा दिये, कई दो दो महीने के संयुक्तअङ्क निकाल रहे हैं। अखंडज्योति अपनी शक्ति भर न तो पृष्ठ घटावेगी, न मूल्य बढ़ावेगी, न बन्द होगी। और जिस दर्जे का कागज गत आठ महीने से लग रहा है, न उससे घटिया लगावेगी, पाठक इतने से ही सन्तोष कर लें। अखंड ज्योति तथा पुस्तकों में बढ़िया कागज लगाने या पृष्ठ बढ़ाने का यह अवसर नहीं है। इस समय तो कागज जैसा कुछ भला बुरा मिल रहा है उसी से सन्तोष करें। हाँ! उपयुक्त अवसर आते ही हम अपनी सब से सस्ती पत्रिका को अधिक से अधिक उन्नत करने में किसी से पीछे न रहेंगे।

प्रेम का मूल्य प्रेम ही है। तुम दूसरों के शरीरों पर शासन कर कर सकते हो· परन्तु जब तक अपना हृदय किसी को समर्पण न कर दो, तब तक उसके हृदय पर अधिकार नहीं कर सकते।

× × × ×

जो संसार के समस्त पदार्थों में दोष ही ढूढ़ता है, वह अन्ततः बहुत घटे में रहता है। सिर्फ उन्होंने ही कुछ पाया है, जिन्होंने संसार को सत्य समझा है और विनम्र होकर उसकी आराधना की है।

\+ + + +

सर्वोत्तम सफलता उसे मिलती है, जो अपने काम में तन्मय हो जाता है, और उसे करते करते अपने को भूल जाता है।

\+ + + +

पराजय उच्च कोटि की पाठशाला है, जिसने बार बार ठोकरें खाई हैं, जिसने बार बार पराजय को अपनाया है, वही जीवन का सच्चा मूल्य समझ सकता है और सच्ची विजय प्राप्त कर सकता है।

\+ ÷ + +

सुख के समय मित्र हमारी परीक्षा करते हैं और दुःख के समय हम मित्रों की।

\+ + + +

धर्म द्वारा शाश्वत शान्ति

(प्रे०—श्री धर्मपालसिंहजी S.S A. वरला)

सभ्यता के आदि युग से लेकर आजतक धर्म के विषय में विविध मार्गों से छानबीन होती चली आरही है और प्रत्येक सम्प्रदाय के जन्मदाता अपने अपने मतानुसार इस विषय पर प्रकाश डालते आ रहे हैं। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि इस विषय पर पूर्ण प्रकाश पड़ चुका है और इसकी खोज का कार्य्य बन्द होगया है। वास्तव में धर्म की परिभाषा का विषय असीम-कठिन और गहन है, जब तक संसार चक्र चलता रहेगा तभी तक इसकी खोज का कार्य्य भी बराबर चलता ही रहेगा।

मनुष्य जब अन्यान्य सम्प्रदायों के मतों तथा ग्रन्थों का अवलोकन करता है, और जब उनके भिन्न २ मतों और विचारों का अपने लिए कुछ फैसला लेने बैठता है, उस समय उसका मस्तिष्क अनेक शंकाओं का खजाना बन जाता है, वह एक बड़ी भ्रान्ति में पड़ जाता है, इस अवसर पर धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानने की उत्कंठा उस में उपजती है, परन्तु वह चाह—धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझने की, सच्ची चाह नहीं कही जा सकती। सम्प्रदायों के परस्पर के वाद-विवाद में किसी विशेष पक्ष की ओर से पाठ लेने के लिए यह विशेष लाभदायक सिद्ध हो सकती है। अथवा इस उत्कंठा को धर्म की सच्ची जिज्ञासा का प्रथम सोपान कह सकते हैं।

मनुष्य जब अनुभव के मैदान में क़दम रखता है और जीवन के अनन्त मार्ग में जब आपदायें, भूलें, उलझनें आकर रोड़ा बनती हैं और किसी प्रकार सुलझाये नहीं सुलझतीं, तब अन्दर एक द्वन्द्व छिड़ जाता है और जिसका बग़ैर निबटारा हुए जीवन गति का आगे बढ़ना बिलकुल बंद हो जाता है, उस अवसर पर धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानने की सच्ची चाह उत्पन्न होती है।

जीवन पथ पर जितना बढ़ते जाते हैं उतना ही अनुभव भी बढ़ता जाता है और भावों के अन्दर सरलता-निष्कपटता, गम्भीरता भी आती जाती है। जितनी तेज़ी से इन गुणों में वृद्धि हो रही है, उतना ही हम धर्म के निकट आते चले जाते हैं। जब सरल और निष्कपट हृदय में धर्म के लिये सच्ची चाह उपजती है, उस समय उसका समाधान किसी धर्म पुस्तक अथवा किसी बाहरी अन्य साधन द्वारा नहीं होता है बल्कि अन्तरयामी गुरु (आत्मा) ही सब शंकाओं का उत्तर देकर सन्तुष्ट कर देता है जिन सौभाग्यशाली-पुण्यात्मा पुरुषों के हृदय में सत्य ने स्थान पा लिया है, उनको धर्म निर्णय के लिए किसी ग्रन्थ विशेष अथवा उपदेश की आवश्यकता नहीं रहती—वह धर्म के भिन्न २ बाहरी रूपों को न देख कर अन्तर के एक ही वास्तविक रूप को देखते हैं, जो सर्वव्यापक ईश्वरीय धर्म है। वह कहते हैं कि देश-काल आदि अवस्थाओं के अनुसार बाहरी रूप में परिवर्तन होता है परन्तु उन सबका केन्द्र एक ही है।

धर्म की शरण आये बगैर किसी भी प्रकार की उन्नति होना असम्भव है, इसी पारस की शरण आकर लोहा-जीवन स्वर्ण बनाया जा सकता है। अतएव धर्म के विषय में जानकारी ही जीवन में परम पुरुषार्थ है। प्राकृतिक धर्म, प्रवृत्ति और निवृत्ति दो प्रकार का कहा गया है। प्रवृत्ति धर्म वासना से भरे हुए जीवों का स्वाभाविक धर्म है। जन्मजन्मान्तर की अच्छी, बुरी वासनाएं जो इससे चिमटी हुई हैं, वही जीव को आनन्द से अलग ले जाकर दुःख-सुख के चक्र में डाले हुए हैं। ऐसी दशा में प्रवृत्ति को धर्म कहने में संकोच हो सकता है। क्योंकि धर्म अवनति से हटाकर उन्नति की ओर ले जाने वाला कहा जाता है। सत्य वक्ताओं ने कामनाओं का नाश ही उच्चतम अवस्था कही है। अतएव प्रवृत्ति का विरोध हुए बिना आनन्द उद्देश की ओर बढ़ना असम्भव है। परन्तु यह भी एक विशेष बात है कि एक दम कोई भी प्रवृत्ति का निरोध (भोगों की इच्छा का त्याग) नहीं कर सकता। यह

बद्ध जीव जन्मान्तर की जिन भोगाकांक्षाओं से बँधा हुआ है उनकी तृप्ति हुए बगैर इसका संसार से तरना असम्भव है। इसीको भगवान कृष्ण गीता के श्लोक ५६ अ० २ में कहते हैं—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परम् दृष्ट्वा निवर्तते ।

अर्थात् विषयों के त्याग करने से विषय तो दूर रहते हैं पर विषय भोग की वासना बनी ही रहती है केवल आत्म स्वरूप के जानने से उनका नाश होता है—गीता में एक स्थान पर यह भी कहा गया है कि वासनाओं को तृप्त करने के लिए नाना प्रकार के भोग भोगे जाते हैं परन्तु वह घटने की अपेक्षा इस प्रकार और अधिक बढ़ते हैं, जैसे अग्नि घी की आहुति से बढ़ती है, इस दशा में प्रवृत्ति मार्ग पर चलन से भोगाकाँक्षाएं और बढ़ेंगी। फिर वासनाओं की शाँति इस पथ से कैसे सम्भव है ? वास्तव में प्रवृत्ति का असली रूप यदि समझ लिया जाए और उसके अनुसार भोगाकाँक्षाओं को भोगते हुए आगे बढ़ा जाय तो जीव शनैः २ उस अवस्था को प्राप्त कर लेगा, जहाँ उसकी सब वासनाएँ आत्म स्वरूप के दर्शन से भस्म हो जाएंगी।

हमारे भोग्य पदार्थ जो मलिन प्रकृति के द्वारा पालित व पोषित किए हुए हैं, वह पूर्ण विशुद्ध भोग नहीं हैं इन भोग्य पदार्थों में बहुत कम मात्रा में ऐसे कणों की संख्या होती है जो हमारी भोगाकांक्षा तृप्ति का कारण होते हैं और वह भी थोड़े ही समय के लिए जैसे जल तथा अन्नादि भोगों को शीघ्र ही आवश्यकता बनी रहती है। यदि हम उन कणों को जो कि हमारी भोगाकाँक्षा को अधिक समय के लिए तृप्त रखने वाले हैं अपने भोग्य पदार्थों से अधिक संख्या प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त कर लें तो हम एक समय के लिए भोगवासनाओं से मुक्त रहने की सामर्थ प्राप्त कर लेंगे। जिस प्रकार लोहा, सोना, चांदी आदि धातुओं के मिश्रित वर्ग में से चुम्बक द्वारा लोहे के कण प्राप्त किए जा सकते हैं और जिस प्रकार चुम्बक अन्य सब धातुओं को छोड़कर केवल लोहे के कणों को ही अपने में खींच लेता है, ठीक इसी प्रकार प्रकृति मलिन भोगों से विशुद्ध भोग ग्रहण करने के लिए हमें चुम्बक जैसी शक्ति प्राप्त करनी होगी।

ईश्वर विश्वास, संयम और प्रबल इच्छा शक्ति द्वारा यह शक्ति स्वयंमेव उत्पन्न होने लगती है संयम में मन की शुद्धि ही सर्वोपरि है, जिसके लिए पवित्र कमाई का पवित्रता से बना सात्विक भोजन अधिक आवश्यक है। वैसे सभी अङ्गों की शुद्धि होनी चाहिए। मनु ने चार प्रकार की शुद्धि कही है-

अद्भिर्गात्राणी शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति
विद्या तपोभ्याँ भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।

इस प्रकार प्रकृति को समझा बुझा कर एवं आहार-विहार में सावधानी रखकर, नियमित बनकर, चुम्बक शक्ति को प्राप्त करना चाहिए। गृहस्थ-आश्रम की व्यवस्था विन्दु (वीर्य) के वेग को संयत नियत रखने के उद्देश से थी। अभ्यास द्वारा व्यभिचार की गंदगी को हटाकर ब्रह्मचर्य पथ पर आरूढ़ होना चाहिये। प्रेम के स्वार्थ से मैले किए हुए रूप को त्याग कर विशुद्ध प्रेम करने का अभ्यास करना चाहिए।

इच्छा शक्ति की शक्ति अद्भुत ही है, अपने प्रत्येक भोग्य पदार्थ को वैसी ही भावना रखकर भोगना चाहिये जैसा हम कल्याणकारी समझते हैं। जैसे स्नान करते हुए यही भावना रखनी चाहिये जल द्वारा मेरे सब अङ्ग शुद्ध हो रहे हैं। इस प्रकार मनुष्य अपने भोज्य पदार्थों से विशुद्ध भोग प्राप्त करने लगेगा। संयम पूर्वक भोग भोगते हुए उसकी यदि कोई भोगवासना पूर्व में परिमाण में दस थीं तो कम होकर ६ रह जायेंगी और एक समय ऐसा होना सम्भव है कि वह इसी क्रम से घटते २ बिन्दु पर पहुंच जाएँगी। इस प्रकार यह प्रवृत्ति मार्ग का पथिक शान्ति के धाम को ले जाने वाले मार्ग पर जा खड़ा होना है ।

बुद्धि बढ़ाने का साधन

संसार में दुर्बल कमजोर मनुष्यों की कमी नहीं। इसी तरह निर्बल मस्तिष्क वाले व्यक्ति भी बहुत अधिक संख्या में देखने में आते हैं। उनके मस्तिष्क का पूर्ण विकास नहीं होता, प्रायः उसके १⁄१० भाग का ही वे उपयोग कर पाते हैं, शेष यों ही निरर्थक पड़ा रहता है। मनुष्य में मानसिक शक्तियों की ही विशेषता है, अन्यथा उसमें और साधारण पशुओं में क्या अन्तर रह जावे। यह विषय विचारणीय है, कि मनुष्यों की शरीर रचना एक समान होते हुए बुद्धि विषयक इतना असाधारण अन्तर क्यों दीख पड़ता है। एक मनुष्य बुद्धि का पुतला है तो दूसरे में मूर्खता की कमी नहीं।

पाठक जानते होंगे कि सब प्रकार की शक्तियों का मूल स्रोत आत्मा है। यह परमात्मा का अंश होने के कारण अपने अन्दर बहुत ही अधिक महत्ता धारण किये हुए है, उसमें किसी बात की कमी नहीं। कमी है प्रयोग करने वाले की। अपनी शक्तियों को जितना प्रयोग में लाया जाता है, वे उतनी जागृति होती जाती हैं। बुद्धि के अधिकाधिक जागरण में निरंतर और दीर्घकालीन अभ्यास की जरूरत होती है। कई जन्मों के संचित प्रयत्न क्रमशः उसको उन्नतिशील बना पाते हैं। कुछ लोगों में बहुत ही छोटी आयु से अद्भुत प्रज्ञा एवं प्रतिभा देखने में आती हैं, समझना चाहिये कि यह इसके पूर्व संचित प्रयत्नों का फल है। तब क्या भाग्य से ही बुद्धि-बल प्राप्त होता है ? नहीं, ऐसी बात नहीं है। भाग्य भी प्रयत्न का फल है। कुछ समय पूर्व किये हुए संचय का परिणाम यदि पीछे मिले तो भी वह अपने श्रम का ही फल कहा जायगा। कभी-कभी ऐसा अनुभव में आता है, कि बालक आरंभ में बहुत मंद बुद्धि था, परन्तु जब उसे थोड़ी शिक्षा मिली तो बड़ा प्रखर विचारशील निकला। इसका कारण यह है कि पूर्व ज्ञान नवीन जन्म धारण की संधि वेला में विस्मृति से धुंधला हो गया था, जैसे राख जम जाने से अग्नि ढक जाती है, किन्तु जब ऊपर से राख को झाड़ दिया जाता है तो अग्नि का स्वरूप चमकने लगता है। इसलिये आवश्यक है कि प्राचीन और नवीन ज्ञान का प्रकाश करने के लिये प्रयत्न करें और अपनी मानसिक व्यक्तियों को बढ़ावें। यदि प्राचीन संचय कुछ भी न होगा तब भी प्रयत्न से लाभ ही होता है, क्यों कि जो परिश्रम किया जायगा इस समय तथा आगे काम देगा। उसके व्यर्थ जाने की तो कोई आशंका ही नहीं है।

'अभ्यास से उन्नति' यह जीवन का अखंड नियम है। क्यों कि इससे आत्मा की प्राण शक्ति को अधिक क्रिया करनी पड़ती है, और वह नित्य व्यवहार में आने वाले चाकू की तरह मुर्चा आदि से मुक्त रह कर तेज ही होती जाती है। शारीरिक व्यायाम करते समय माँस पेशियाँ खिंचती हैं, तब उनमें प्राण का प्रहार अधिक मात्रा में होने लगता है और जीवन कोष (Calls) फैल फूल कर बड़े एवं सुदृढ़ हो जाते हैं। समस्त शरीर में होने वाली इस क्रिया के सूक्ष्म कम्पन जब अधिक परिमाण में होते हैं और उन कम्पनों को मानसिक प्रोत्साहन मिलता है तो शरीर में विशेष रूप से एक विद्युत का संचार होता है, जिसे शारीरिक बल कहा जाता है, निरंतर के अभ्यास से यह बल स्थायी भी हो जाता है। शरीर में जब चर्बी बढ़ जाती है तो डाक्टर कहते हैं कि इसके आमाशय ने भोज्य पदार्थों में से चर्बी को अधिक ग्रहण किया है, इसी प्रकार मनुष्य की बुद्धि में जैसी विशेषता पाई जाती है, तब समझा जाता है कि उसने अपनी मनो भूमि का निर्माण करने में वैसे ही तत्वों का अधिक उपयोग किया है। पाप वृत्तियों के वशीभूत मनुष्य के बारे में यही समझना चाहिये कि इसने बहुत समय तक उस प्रकार के अशुभ विचारों को अपने मन में स्थान दिया है, फल स्वरूप वे परिपुष्ट हो गये हैं।

जिस प्रकार के विचार जितने अधिक मनोयोग एवं दिलचस्पी के साथ किये जाते हैं उनके उतने ही गहरे अंकन (convolution) मस्तिष्क की मज्जा पर अंकित होते हैं। बार बार उन विचारों को करने से वे रेखाएं अधिक गहरी और स्थायी होती जाती हैं एवं कुछ समय उपरान्त अपने लिए स्थायित्व प्राप्त करके उन्नति एवं आदत के रूप में दृष्टिगोचर होने लगती हैं। शारीरिक और मानसिक विकास के इन शास्त्रीय सिद्धांतों पर विचार करने से यह सिद्ध होता है कि मानसिक विकास करना, अपनी बुद्धि को बढाना, मनुष्य के अपने हाथ में है और वह प्रयत्नपूर्वक बुद्धिमान बन सकने में सर्वथा स्वतंत्र है। व्यायाम से शरीर का हर एक अंग उन्नति करता है, यह नियम मानसिक शक्तियों पर भी लागू होता है। एकाग्रतापूर्वक किसी एक विषय पर लगातार कुछ समय एक गहरा मनन करना बुद्धि बढ़ाने के लिये बहुत ही उत्तम अभ्यास है। इससे सारा बल एक बिन्दु पर एकत्रित होता है और इस एकत्रीकरण से मन की उन्हीं शक्तियों की ओर रक्त की सूक्ष्म स्फुरणा का प्रभाव होता है, जिससे उनके कारण में विशेष सहायता मिलती है।

तुम्हारी रुचि जिस में अधिक हो, ऐसे किसी उत्तम विषय के लिये लो। उस विषय की कोई ऐसी पुस्तक चुन लो जिसका लेखक कोई योग्य व्यक्ति हो और उसमें नवीन एवं गूढ़ विचार हों। इस पुस्तक का थोड़ा सा अंश बहुत धीरे धीरे एक एक शब्द पर विचार करते हुए पढ़ो और फिर रुककर उस विषय पर खूब गंभीरता के साथ मनन करो। जितने समय में उतना पढा था, कमसे कम उससे दूना समय उसे समझने में लगाओ। इस गंभीरता पूर्वक मनन करने से केवल नवीन अध्ययन ही न होगा वरन् बुद्धि को बढ़ाने वाला व्यायाम भी होगा, मन उचटे तो उसे रोक कर उसी विषय पर लगाओ। परन्तु यदि तुमने रुचिकर विषय चुना है, तो उस पर से मन को उचटने की कोई बात ही नहीं है। चूंकि यह अभ्यास कुछ धार्मिक दृष्टि से नहीं है, इसलिये यदि तुम्हारा मन धर्म में कम रस लेता हो, तो दूसरा कोई विषय खुशी खुशी चुन सकते हो। हाँ कोई ऐसा विषय न हो जिसका मन पर कोई दुष्प्रभाव पड़े। इस प्रकार का अभ्यास आरंभ में पन्द्रह मिनट और फिर बढ़ाकर आध घंटा या एक घंटा तक किया जा सकता है। आरंभ में थोड़ा ही अभ्यास करना इसलिए उचित है कि अधिक थकान न आवे।

इस अभ्यास में दोनों ही लाभ हैं, जिस विषय को विचार के लिये चुना गया है, मनन करने से उसमें बहुत सी नवीन बातें मालूम होंगी और उसमें अपनी विशेष योग्यता हो जावेगी, दूसरे प्रकृति अपनी निष्पक्ष और उदार न्यायशीलता के अनुसार तुम्हारे परिश्रम का बदला बुद्धि वृद्धि के रूप में देदेगी, जिसके अनुसार तुम किसी विषय पर अधिक सावधानी के साथ उपयोगी सोच विचार कर सकोगे, उस समय तुम्हारी बुद्धि जो कुछ निर्णय करेगी वह सच्चा और हितकर होगा।

मनुष्य की आत्मा ज्ञान स्वरूप है। अज्ञान का कारण अपने मानसिक औजारों का ठीक प्रकार प्रयोग कर सकने में अयोग्य होना होता है, इसलिये औजारों को दोष देने की अपेक्षा उनको चलाने का अभ्यास करो। अपने को बुद्धि का गुलाम मत समझो, असल में बुद्धि तुम्हारी सेविका है। केवल ढील देने के कारण ही वह कुंठित हो जाती है। "मैं ज्ञान स्वरूप सच्चिदानंद आत्मा हूँ। बुद्धि और ज्ञान का अविरल स्रोत मेरे अन्दर बह रहा है। अब मैं विवेक पूर्वक उसका ठीक ठीक प्रयोग करता हूँ"। इन मंत्रों को बार बार भावना क्षेत्र में दृढ़ीभूत करते रहो। इन मंत्रों को जपने से ही कुछ लाभ न होगा, जब तक तुम पूर्ण श्रद्धा के साथ इन पर विश्वास न करने लगो। बिना नागा अभ्यास करो। नियत समय का ध्यान रखो। प्रमाद और आलस्य को पास भी मत फटकने दो। यह छोटा सा साधन बहुत अल्प समय में ही तुम्हारे सामने आश्चर्य-जनक सफलता उपस्थित कर देगा।

जल्दी कैसे मर जाते हैं?

मनुष्य को अपने जन्मदिन से ही मृत्यु से लड़ना पड़ता है। कहते हैं कि मृत्यु शिर पर नाचती रहती है। इस दुश्मन से युद्ध करके अपने को जीवित रखने के लिए तरह-तरह के दाव पेच चलाने पड़ते हैं। आरोग्य शास्त्र, शरीर विज्ञान, स्वास्थ्य-अन्वेषण, चिकित्सा शास्त्र, मनोविज्ञान आदि के आविष्कार मृत्यु से बचने और दीर्घजीवन के लिए ही हुए हैं। जब इन हथियारों में कुछ त्रुटि आजाती है, जब मनुष्य दाव चलाना भूल जाता है, तो उसे हारना पड़ता है। इस पराजय को ही मृत्यु कहा जा सकता है।

इन दिनों जर्मनी की गुप्तचर सेना-गेस्टेपो और फिफ्थ कालम की सर्वत्र बड़ी चर्चा है। कहते हैं, कि इनके जासूस बहुत ही गुप्त रूप से साधारण जनता में मिल जाते हैं और अपने मालिक का काम पूरा करते रहते हैं। यह इतने चालाक होते हैं, कि अपना भेद प्रकट नहीं होने देते और आसानी से पहचाने नहीं जाते। हिटलर की तरह मृत्यु के भी बड़े निकट जासूस हैं, जो हमारे शरीर में छिप कर बैठ जाते हैं और अपने मालिक का काम पूरा करते रहते हैं। इनका नाम 'फिफ्थ कालम' नहीं, वरन् 'बुरी आदतें' हैं। यह चुपचाप हमारे स्वभाव में घुस पड़ती हैं और धीरे-धीरे मनुष्य की सारी सम्पत्ति पर अपना कब्जा करके उसे अपना गुलाम बना लेती हैं। जब घर में ही विभीषण उठ खड़े हों, तो फिर शत्रु से लड़ कर सफलता कैसे प्राप्त की जाय ? हम अशक्त होते हैं, इसलिए हारते हैं और जब हारते हैं, तो मर जाते हैं।

मृत्यु के इन गुप्तचरों में कई तो ऐसे छोटे होते हैं,जो बहुत ही तुच्छ प्रतीत होते हैं। झुक कर बैठना और घुग्घू की तरह छाती झुका कर चलना एक ऐसी ही छोटी आदतें हैं, जो देखने में महत्वहीन प्रतीत होती हैं. परन्तु फेफड़ों पर अनावश्यक दबाव डाल कर मृत्यु को बहुत निकट बुला लाती हैं। हर वक्त अकड़े रहने की आदत भी इसी से मिलती-जुलती है। कुछ लोगों को आदत होती है, तो रास्ता चलने में पैर इस तरह रक्खेंगे मानो धरती को चूर कर देंगे। लिखेंगे तो कलम को ऐसे पकड़ेंगे मानो हल चला रहे हैं। कुर्सी पर बैठेंगे तो उस पर ऐसे चिमट जायँगे मानो कुर्सी भागने ही वाली हो। उनकी पेशियां हर वक्त खिची रहती हैं, यहाँ तक कि सोते समय भी ढीली नहीं होतीं, ऐसे लोग जब सोकर उठते हैं, तो उन्हें बड़ी थकान मालूम होती है, क्योंकि वे साधारण कामों में आवश्यकता से दस गुनी शक्ति अधिक खर्च कर देते हैं। बहुत से लोगों को शोरशराबा, दौड़ धूप और उछल कूद की आदत होती है। उनकी जबान निष्प्रयोजन कतरनी की तरह चलती रहती है और जबड़े, होट, भवें, कोठे हाथ अकारण चलते रहते हैं। इस प्रकार की दीर्घकालीन हरकतों से गर्मी पैदा होती है, वह रक्त को सुखाती है। यदि इस प्रकार शक्तियों का अपव्यय न किया जाय और ठीक तरीके से चलने, बैठने, उठने का अभ्यास रखा जाय तो हमारी आयु में बहुत कुछ वृद्धि हो सकती है।

डाक्टर अबर्नेथी का कथन है, कि "लोग जितना भोजन पेट में ठूंसते हैं, प्रायः उसका चौथाई भाग ही पच सकता है, शेष भार को तो जीवन की बाजी लगा कर पेट में रखते हैं।" यकृति, आमाशय और आंतों से उतना ही पाचक रस निकलता है, जो शरीर की आवश्यकतानुसार पका सके। जिन्हें कब्ज रहता है, उन्हें समझना चाहिए कि वे आवश्यकता से अधिक भार पेट पर लाद रहे हैं और इसमें जीवन की जोखिम उठा रहे हैं। सच्ची भूख वह है, जो पेट खाली होने पर लगती है। पेट में मल भरा रहने पर भी जब भूख लगती है, तो वह वास्तव में आंतों की जलन होती है, जो करीब-करीब भूख जैसी ही मालूम पड़ती है।

फेफड़े में रक्त की सफाई होती है। प्राणप्रद-वायु (Carbonde oxide and oxygen

के आवागमन से सोलह सौ घन फुट क्षेत्र फल के क्षेत्र का मैल साफ किया जाता है। शरीर में उत्पन्न होते रहने वाले विषों में से तीन चौथाई भाग फेफड़ों द्वारा साफ होता है। ऐसे उपयोग यंत्र को लोग धूम्रपान द्वारा नष्ट करते हैं। तम्बाकू के धुँए से फेफड़ों की सतह पर एक प्रकार की तह जम जाती है, जिससे खून की विषैली गैसों का बाहर आना और शुद्ध वायु का पूर्ण रूप से प्रवेश होना रुक जाता है, जिससे इस व्यसन में लिप्त लोग अपने खून को विषैला बना कर आयु को क्षीण करते हैं, चाय, काफी, मद्य, भंग, अफीम के नशे नाड़ी जाल पर बड़ा घातक प्रभाव डालते हैं और क्षणिक उत्तेजना दे दे कर मनुष्य का जीवन रस सुखा डालते हैं।

निद्रा की न्यूनता मृत्यु का अफसर गुप्तचर है। सोते समय यदि छाती पर हाथ का या किसी अन्य वस्तु का भार पड़ जाता है, तो श्वांस में रुकावट होती है, इसका असर स्नायुओं पर होता है और अर्धजाग्रत अवस्था में ऐसा भय मालूम पड़ता है, मानो छाती पर भूत चढ़ बैठा हो। रात को अधिक भोजन करके तुरन्त सो जाने से श्वांस का अवरोध होता है और पाचन क्रिया अधिक तेजी से जारी रहती है। आराम और मेहनत दोनों एक साथ नहीं हो सकते। जब पेट में जोरों से काम हो रहा है, तो नाड़ी और पेशियों को आराम कैसे मिल सकता है? फलस्वरूप अच्छी नींद नहीं आती और अच्छी नींद न आने से क्षति की पूर्ति नहीं होने पाती। घाटा बढ़ता है और दिवालिया बन जाते हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि हम रात को पेट हलका रख कर सोवें और निद्रा का सच्चा आनन्द प्राप्त करें।

बुरे विचार करना, बुरी बातें सोचना, बुरे कामों पर ध्यान देना, मृत्यु सेना के प्रधान अधिनायक हैं, इनका कार्य अन्य साधारण दूतों की अपेक्षा बहुत ही तेज होता है। ईर्षा, द्वेष और घृणा के विचार शरीर में एक प्रकार का दाह उत्पन्न कर देते हैं। चिन्ता और निराशा से सारी मशीन ढीली पड़ जाती हैं, स्वार्थ और कपट की भावनाऐं रक्त को विषैला बनाती हैं। काम और क्रोध के विचार रक्त का चाप बढ़ा देते हैं। इन दुर्गुणों में यदि कई इकट्ठे हो जाते हैं, तो उनका नाशक कार्य भी उतना ही तीव्र हो जाता है और हम पूरी आयु का उपभोग न करके बहुत जल्दी मर जाते हैं।

मूर्ख मेंढक नालियों का गन्दा पानी पीकर टर्राता है, किन्तु मधुर मक्षिका कमल-पुष्पों का मधुर रस पान करके भी घमंड नहीं करती।

*　*　*　*

बहुत मित्रों से सुख मिलता है, गुरुजनों की सेवा से बुद्धि बढ़ती है, प्रयत्न से सिद्धि प्राप्त होती है और धर्म में प्रवृत्त होने से धर्म का मार्ग खुल जाता है।

*　*　*　*

यदि दुनिया तुम्हारे कार्यों की प्रशंसा करती है, तो इसमें कुछ भी बुरा नहीं, खतरा तब है, जब तुम प्रशंसा पाने के लिए किसी काम को करते हो।

*　*　*　*

धर्म का महान् महत्व केवल दो शब्दों में निहित है। वे शब्द हैं 'दया और प्रेम।'

*　*　*　*

केवल धर्म धर्म रटने के बातूनी जमा खर्च से कुछ भी लाभ नहीं। यदि तुम प्रदर्शन के लिए धर्म का आडम्बर करते हो, तो उससे रत्ती भर भी आत्मोन्नति न होगी, इसकी अपेक्षा तो शारीरिक व्यायाम करना और हँसना, खेलना धर्म के अधिक निकट है।

*　*　*　*

श्रेष्ठ-आचरण

(श्री १०८ बाबा गोपाल दास जी महाराज)

मनुष्य जीवन में सदाचार का बहुत ऊंचा स्थान है। व्यवहारिक जीवन में जिस मनुष्य के आचार ठीक नहीं हैं, वह चाहे कितना ही गुणी, धनी और विद्वान क्यों न हो, समाज में आदर प्राप्त न कर सकेगा। शास्त्रकारों का आदेश है, कि हम दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करें, जैसा कि अपने लिये चाहते हैं। कोई मनुष्य यह नहीं चाहता कि दूसरे लोग मेरे साथ अपमानजनक, अशिष्टता: का, रूखा या छल कपट, आदि का व्यवहार करे। फिर उसे स्व ं दूसरों के साथ वैसा व्यवहार क्यों करना चाहिए ?

संसार कुए की आवाज की तरह उत्तर देता है। किसी पक्के कुए के मुंडेर पर बैठ कर तुम जैसे शब्दों का उच्चारण करोगे उसमें से वैसी ही प्रतिध्वनि वापिस आवेगी। गालियाँ दोगे तो कुआ भी तुम्हें फौरन वैसी ही गाली देगा। यदि तुम लोगों के साथ बेईमान, धोखेबाजी, या निष्ठुरता का व्यवहार करोगे तो वैसे ही अवसर तुम्हारे सामने आवेंगे। यह हो सकता है कि जिस आदमी को तुमने सताया है, वह स्वयं उसका उत्तर देने में समर्थ न हो, परन्तु परमात्मा अन्य प्रकार से उसके सामने देर सबेर में वैसे ही दृश्य उपस्थित कर देगा।

प्रेम, आदर, और उदारता का स्वभाव एक अनमोल खजाना है। सदाचारी मनुष्य अपनी सहज उदारता के कारण दूसरों के साथ भलाई करता रहता है, मानो वह अपने खत्ते के जौ जगह बोता फिरता है। उसका बीज अकारथ नहीं जाता बल्कि सौगुना होकर लौट आता है। जिस मनुष्य के हृदय में दया है, वह चाहे जहाँ चला जाय उस पर सब जगह दया होगी। जो दूसरों का आदर करना जानता है वह परदेश में भी आदर प्राप्त करेगा। जो दूसरों के दुख में मदद देता है, वह अपनी विपत्ति में भी दूसरों की सहायता पाता है।

हिन्दू धर्म 'जड़' नहीं है

(महात्मा गाँधी)

हिन्दू धर्म की तपश्चर्या पर ही उसकी शुद्धता का आधार है। जब कभी धर्म पर आफत आती है, तब एक सच्चा हिन्दू तपश्चर्या करता है, बुराई के कारण ढूंढता है, और उसका उपाय करता है।

शास्त्रों में वृद्धि होती ही रहेगी। वेद, उपनिषद स्मृति, पुराण आदि एक साथ एक ही समय में उत्पन्न नहीं हुए हैं, किन्तु प्रसंग आने पर ही उनकी उत्पत्ति हुई है। इसलिये उनमें विरोधाभास भी होता है। वे ग्रन्थ शाश्वत सत्य को नहीं बताते हैं, वरन् अपने अपने समय में शाश्वत सत्य का किस प्रकार अमल किया गया था, यही वे बताते हैं। उस समय जैसा किया गया था वैसा दूसरे समय में भी करें तो निराशा के कूप में ही पड़ना होगा। एक समय यहाँ पशु यज्ञ होता था, इसी लिये क्या आज भी करेंगे ? एक समय हम लोग मांसाहार करते थे, इसलिये क्या आज भी करेंगे ? एक समय चोर के हाथ पैर काट डाले जाते थे, क्या आज भी उनके हाथ पैर काटेंगे ? एक समय हमारे यहाँ एक स्त्री अनेक पति से विवाह करती थी, क्या आज भी करेगी ? एक समय हम लोग बाल-कन्या का दान करते थे, तो क्या आज भी वही करेंगे ? एक समय हम लोगों ने कुछ मनुष्यों की प्रजा को तिरस्कृत माना था, इसलिये क्या आज भी उसे तिरस्कृत ही मानेंगे ?

हिन्दू धर्म 'जड़' बनने से साफ इनकार करता है। ज्ञान अनन्त है, सत्य की मर्यादा को किसीने भी खोज नहीं पाया है। आत्मा की नई शोधें होती ही रहती हैं, और होती ही रहेंगी। अनुभवके पाठ पढ़ते हुए हम लोग अनेक प्रकार के परिवर्तन करते रहेंगे। सत्य तो एक ही है, लेकिन उसे सर्वांश में कौन देख सका है ? वेद सत्य हैं, वेद अनादि हैं लेकिन उसे सर्वांश में कौन जान सका है। वेद के नाम से जो आज पहचाने जाते हैं वे तो उसका करोड़वां भाग भी नहीं हैं, जो हम लोगों के पास हैं उसका अर्थ भी सम्पूर्ण तया कौन जानता है ?

भारतीय योगियों की कहानी।

एक योरोपियन की ज़बानी ॥

(ले० श्री० जी० के० मर्फी)

जो योरोपियन पूर्व में नौकरी के संबन्ध में अथवा केवल पर्य्यटन की दृष्टि से जाते हैं, उनके लिये भारतीय फ़कीर, साधु, सन्यासी और योगी सदा ही एक दिलचस्पी के विषय रहते हैं। इनमें से कुछ तो धूर्त होते हैं, और साधारण मनुष्यों को ठग कर अपना पेट पालते हैं, लेकिन बहुत से साधुओं और फ़कीरों में कुछ अलौकिक शक्तियाँ भी होती हैं। ये फ़कीर अपने "जादू" के ऐसे करिश्में दिखला सकते हैं और दिखलाते हैं, जो गोरों को प्रायः असम्भव और अद्भुत मालूम पड़ते हैं।

इसके पहिले कि भारतीय सन्यासियों के 'करिश्मों' का कुछ वर्णन करूं, मैं यह बताना चाहता हूं कि मैं इसका अधिकारी कैसे हुआ। मैंने संसार भ्रमण करके केवल इधर-उधर काम चलाने का ही ज्ञान प्राप्त नहीं किया है, वरन् मैं पूर्व में लगभग चालीस वर्ष रहा हूँ और मैंने अपना समय उच्च पद पर रह कर सरकार की नौकरी करने में व्यतीत किया है। मैं अच्छी हिन्दोस्तानी और बर्मी भाषा बोल सकता हूं। मैं उन पहाड़ियों और जंगलियों की स्थानीय बोली भी जानता हूँ जो आज की सभ्यता से दूर हैं, मेरा दावा है कि मैं हिदुस्तान और हिन्दुस्तानियों को अच्छी तरह से जानता हूँ। मैं उन लोगों के बीच में रह चुका हूं। मैंने उनके साथ काम किया है। मैंने उनकी 'मार्गदर्शक' 'दार्शनिक' और साथी की तरह से सेवा की हैं। इस निकट सम्बन्ध के कारण ही मैं भारतीय फकीरों और महात्माओं द्वारा किये गये 'जादू' के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सका हूं। इसी वजह से मैं वहाँ की रीति, रिवाज और धारणाओं को ठीक तरह से समझ सका, जो कि आमतौर से अफसरों के लिये एक गूढ़ विषय रहते हैं। अब मैं अपनी कहानियाँ सुनाता हूं।

मेरे भारत निवास के लम्बे अरसे में नीचे लिखे चमत्कार मुझे देखने को मिले, जो कि अध्यात्मवाद अथवा अलौकिकता के विद्यार्थियों के लिये दिलचस्पी के सामान होंगे।

एक अवसर पर एक योगी ने, जिसका यह दावा था कि उसने मृत्यु की समस्या को हल कर लिया है, घोषणा की, कि वह पाँच रोज़ तक लाश की तरह जीवित कब्र में गाड़ दिये जाने के लिए तैयार है पाँच दिन के बाद वह फिर जीवित हो जायगा। वहाँ के रहने वाले बहुत से युरोपियन अफसरों ने यह स्वीकार कर लिया और योगी को अपना कमाल दिखाने के लिये तैयार कर दिया। एक काठ का ताबूत बनाया गया। वहाँ के मैजिस्ट्रेट के अहाते में एक छः फीट गहरी कब्र खोदी गई। यह स्थान जान बूझकर इस लिये चुना गया था कि यहाँ पर उसकी पूरी तरह से रखवाली हो सकती थी।

निश्चित दिन पर थोड़ा प्राणायाम कर लेने के बाद वह साधु ताबूत में बन्द कर दिया गया। इस समय उसकी अवस्था कुछ बेहोश की तरह हो रही थी। इस ताबूत में बारह बड़े २ छेद थे। ऊपर से बड़े ढक्कन रखकर इन छेदों में कीलें डालदी गईं। मैजिस्ट्रेट, सुपरिन्टेन्डेण्ट पुलिस, दो यूरोपियन डाक्टरों तथा दूसरे अफसरों के सामने उसपर मुहर लगा दी गई। ताबूत कब्र में डाल दिया गया और उस पर मिट्टी चढ़ा दी गई। ऊपर की सतह पर बड़े बड़े गोल पत्थर रख दिये गये। सब के ऊपर एक तागा कब्र के इस पार से उस पार तक बांध दिया गया। तागा इस तरह बांधा गया कि बग़ैर उसके छुये कब्र में कोई हाथ नहीं लगा सकता था। मैजिस्ट्रेट ने इस तागे पर होशियारी के साथ मुहर लगादी।

उस दिन से रोजाना अफसरों का एक छोटा सा दल उस कब्र की परीक्षा करता था। वह यही परीक्षा करते थे कि तागे की मुहर को किसी ने छुआ है या नहीं मैजिस्ट्रेट साहब स्वयं इस बात की निगरानी रखते थे कि कोई चीज को छूने न पावे। पांचवें दिन दो बजे पूर्व निश्चय के अनुसार हम लोग

त्रित हुये। तागे पर की मुहर तोड़ी गई, पत्थर। दिया गये। जमीन खोदी गई और ताबूत को शेयारी से ऊपर उठाया गया। ढक्कन की कीलें काल ली गईं। फकीर बाहर निकाला गया र ठीक उसी तरह जमीन पर लिटा दिया गया था कि उसने गाड़े जाने के पहिले आदेश किया था।

उसका शरीर शिथिल और ठण्डा हो गया था। डाक्टर लोग जीवन का कोई भी चिन्ह नहीं पा के। नाड़ी बन्द हो गई थी। सांस का पता नहीं चलता था। प्रत्येक व्यक्ति ने जिसमें डाक्टर लोग भी शामिल थे यह समझा कि वह फकीर बिल्कुल निर्जीव हो गया है। फकीर ने पहिले ही मनाकर रक्खा था कि कोई उससे छेड़-छाड़ न करे। इस लिये हम लोग मुर्दे को गौर से देख रहे थे। मन में कुछ लोभ के साथ हम यही सोच रहे थे कि क्या यह मुर्दा जिसने कि पूरे भरोसे के साथ कहा था, कि वह जी जायगा, सचमुच ही जी जायगा। अगर वह न जी सका तो?

आध घण्टे बाद डाक्टर ने फिर नाड़ी देखी। हमको यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उसकी नाड़ी अब मन्दगति से चलने लगी है। एक घण्टे के बाद नाड़ी और भी तेज चलने लगी। दूसरा घण्टा होते-होते उसने अपनी आँखें खोलदीं। चारों तरफ घूर कर देखा और जमुहाई ली जैसे कि वह एक लम्बी नींद से अभी उठा हो।

थोड़ा सा प्राणायाम करने के बाद वह उठ खड़ा हुआ। प्रश्न करने के बाद हमें मालूम हुआ कि उस आश्चर्यजनक कार्य करने की क्षमता उसमें प्राणायाम ही से आई थी। उसने बताया कि वह इच्छा के अनुसार अपनी प्राण शक्ति को गुप्त कर सकता था। यह काम वह कैसे करता था, यह आज तक एक रहस्य ही है।

(२)

हिन्दुस्तान के रस्सियों के तमाशे के बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। साथ ही साथ यह भी कहा गया है कि आज तक किसी ने उसे देखा नहीं है, इसके बारे में जो कुछ कहा जाता है सब दूसरों से सुनकर। लेकिन लेखक ने इसे अपनी आंखों से देखा है। भारत के मध्य प्रान्त में जबलपुर से ६० मील दूर मांडला स्थान में १९०० या १९०१ में यह तमाशा हुआ था। इस तमाशे को एक बूढ़े योगी ने किया था। अपनी इन्हीं अलौकिक शक्तियों के कारण उसका वहां बहुत सम्मान था।

"हम इसके लिये उत्सुक थे कि इस अवसर पर जिम्मेदार गवाह भी उपस्थित रहें, इस लिये हमने इस तमाशे को वहां के डिप्टी कमिश्नर मि० मा० के बंगले पर कराया। मि० मा० के मेहमानों में ये लोग भी थे-मि० भेरिक सुपरिन्टेन्डेण्ट पुलिस, मि० थामसन फारैस्ट आफिसर और मैं।"

'अप्रैल का चमकीला दिन था, हम लोगों के अलावा करीब आधे दर्जन हिंदुस्तानी नौकर भी वहां उपस्थित थे। वहाँ के कुछ स्थानीय लोग भी इस आश्चर्यजनक घटना को देखने के लिये एकत्र हो गये थे।"

'बूढ़े योगी ने यह कह कर खेल शुरू किया कि वह बहुत आश्चर्यजनक खेल दिखाने जा रहा है। इस खेल में एक लड़का उस रस्सी पर चढ़ेगा जो सीधी स्वर्ग की तरफ जा रही होगी। लड़का टुकड़े-टुकड़े कर दिया जायगा। उसका कटा हुआ शरीर दिखलाई भी पड़ेगा। बाद में वह उस लड़के को जीवित भी कर देगा, उस पर कुछ भी असर नहीं होगा।"

इस भूमिका के बाद उसने उस लड़के को आगे खड़ा किया। उसका नाम मंगरू था। वह नौ वर्ष का था। योगी ने हमें रस्सी भी दिखलाई जो पृथ्वी पर लिपटी हुई पड़ी थी। योगी ने जो कम से कम साठ वर्ष का अवश्य हो चुका होगा अपने सब कपड़े उतार दिये। वह केवल अपनी गंदी धोती पहने रह गया। पाँच मिनट तक वह

अपने ढोल को लगातार पीटता रहा। बीच-बीच में वह हम लोगों को जोश दिलाता था कि हम लोग उसकी ओर लगातार देखते रहें।

"बहुत ग़ौर से देखिये" उसने कहा, 'हम जो कुछ भी कर रहे हैं उसमें से कुछ भी देखना मत छोड़िये।'

"मैं घूरकर देख रहा था क्यों कि मैं किसी भी चीज़ को बिना देखे छोड़ना नहीं चाहता था। थोड़ी देर बाद मेरा मन न जाने कैसा होने लगा। मुझे ऐसा लगने लगा जैसे मैं कोई स्वतन्त्र दर्शक नहीं हूं, बल्कि योगी के असर में आगया हूँ। इसके बाद नीचे लिखी बातचीत हुई जिसका प्रति शब्द मुझे अभी तक याद है।

'मंगरू, तुम कहाँ जा रहे हो? योगी ने पूछा।

'तुम जहाँ कहीं भी मुझे भेजो, गुरुजी!' लड़के ने कहा।

'क्या तुम डर रहे हो, मेरे बच्चे।'

'नहीं मैं क्यों डरूं?'

'मानलो कि कोई शत्रु तुम्हें मार डाले।'

'मुझे परवाह नहीं, क्यों कि मैं तुम पर विश्वास करता हूँ।'

'क्या तुम सचमुच मुझ पर विश्वास करते हो, मंगरू?'

'बेशक तुम्हीं तो मेरे माँ-बाप हो।'

'बहुत अच्छा, चढ़ने के लिये तैयार हो जाओ।'

"तब योगी ने रस्सी के एक किनारे को पकड़ कर आकाश की ओर फेंक दिया। रस्सी एक बाँस की तरह सीधी खड़ी हो गई।

हम लोगों में से हर एक ने देखा कि रस्सी हमारी दृष्टि के पार नीले आकाश में ऊपर। की तरफ फैल गई। फिर मंगरू को बुलाकर उसने कहा, 'आओ मेरे बेटे, रस्सी पर चढ़ जाओ, हिम्मत करो।'

इन शब्दों के निकलते ही लड़के ने रस्सी को पकड़ा और उस पर बन्दर की तरह चढ़ता गया। यहां तक कि वह आँखों से ओझल हो गया। हमारी तरफ ताक कर, शान्त होकर योगी ने कहा, 'वह मेरे शत्रुओं में से एक को मारने ऊपर गया है।' उसी समय हम लोगों ने एक विचित्र आवाज सुनी। मालूम पड़ता था कि कोई झगड़ा हो रहा है। उसी क्षण हम लोगों को विस्मित करता हुआ एक कटा हुआ पैर लुढकता-पुढकता नीचे आ गया। थोड़ी देर बाद दूसरा पैर भी नीचे आ गया। उसके बाद दोनों कटे हुए हाथ नीचे आये और अन्त में धड़ भी आ गिरा। जिस समय हम लोग यह तमाशा 'सुन्न' होकर देख रहे थे, योगी ने चिल्लाकर कहा देखिये सरकार, उसका शरीर टुकड़े-टुकड़े हो गया। अब मैं इन टुकड़ों को जोड़ दूंगा। उन टुकड़ों को ठीक तरह से रख कर उसने उन पर हाथ फेरा। 'ग़ौर से देखिये, उसने कहा-वह अभी जीवित हो जायगा।....मंगरू मेरे बेटे, मेरे बेटे वापस आओ!' मंगरू वापस आगया। वह हम लोगों के चकित होने पर मुस्करा रहा था।

हमने उससे पूछा कि क्या वह अपना करिश्मा फिर दिखा देगा। 'उसको देखने के लिये एक साहब बहुत उत्सुक हैं,' मैंने कहा। पहिले तो उसने आनाकानी की। अन्त में वह मान गया और हमने दस दिन के पश्चात् एक दिन निश्चित किया।

दूसरे अवसर पर जो तमाशा हुआ था उसको मि० मा० के बंगले पर किया गया था। दफ्तर के सामने वाले मैदान में, जो उनकी खिड़की से बीस-पच्चीस फीट दूर था वहीं पर तमाशा होना निश्चित हुआ।

जब वह अपनी करामात ठीक पहले की तरह दिखाने लगा, मैं बंगले में खिसक गया। वहाँ पर हमारा कैमरा तैयार रक्खा था। मैंने योगी के बहुत से फोटो लिए। निगेटिव होशियारी से तैयार किये थे, लेकिन फोटो में सिर्फ थोड़े से दर्शक दिखाई पड़े जो कि मन्त्र मुग्ध होकर एक टक ताक रहे थे। वह योगी गंभीर मुद्रा धारण करके तरह तरह के इशारे कर रहा था और ऊपर की ओर दिखला रहा था।

हालांकि मैंने काफी मेहनत और होशियारी में उस योगी की खास खास करामातों की तसवीरें ली थीं, फिर भी उसमें सिड़ी पर चढ़ने वाले बच्चे की अथवा उसके शरीर के टुकड़ों की तसवीर नहीं आई, उसमें उनका पता भी नहीं था। तसवीर के एक प्रिंट में मंगरू बंगल से आता हुआ दिखाई पड़ता था।

मेरा विचार है कि इस घटना से भारत में होने वाले रस्से के करिश्मे का रहस्योद्घाटन हो जाता है। इससे साबित हो जाता है, अगर सबूत की जरूरत हो, तो कि यह करामातें 'नजर बन्दी की हैं।

वैज्ञानिक लोग इस पर विश्वास नहीं करेंगे वे यह बात सुन कर कि कमरे के बाहर बैठे हुए इतने आदमियों पर नजर बन्दी हो सकती हैं हँस देंगे। जो भी हो, मैं इतना हिम्मत के साथ कह सकता हूँ कि असम्भव प्रतीत होते हुए भी भारतवर्ष के योगी के करिश्में दिखला सकते हैं और दिखलाते हैं। ये योगी अपने रहस्यों को कभी नहीं बतलाते। केवल जब वे किसी योरोपियन को कई साल के बाद खूब जान लेते हैं, तब सचमुच उनके मित्र हो जाते हैं, और अपनी जादूगरी के बारे में उनसे बहुत थोड़ी बात चीत भी करते हैं, अन्यथा उनके जादू के भेद जान लेना विशेष कर योरोपियनों के लिये असम्भव है।

मनुष्य की प्रत्येक भूल उसे कुछ न कुछ सिखा देती हैं यदि वह सीखना चाहे।

× × ×

विवाद करने का तरीका न जानने से ही मनुष्य बहुधा बात करते हुए, उत्तेजित होकर लड़ने लगते हैं।

× × ×

अस्थिर होकर भाग्य के आगे अपना सर न झुकाओ शक्तिमान होकर अचल बने रहो, शक्ति के प्रकाश के लिये ही आशा ने अपने द्वार बन्द कर रखे हैं, बलवान भाग्य की मार खाकर भी बहु बली होकर नवजीवन प्रारंभ करते हैं।

वेदों का अमर सन्देश

ईशावास्य मिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम्॥
॥ यजु० ४०—१॥

इस चलायमान संसार में जो कुछ चलता हुआ है, सब ईश्वर से आच्छादित है। इस लिये त्याग भाव से भोग करो और किसी के भी धन का लालच मत करो।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजी विषेच्छत ॐ समाः।
एवं त्वयिनान्यथे तोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥
॥ यजु०-४०-२॥

इस संसार में कर्म करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा करो। तभी तुमसे कर्म का लगाव छूट सकेगा। कर्म बन्धन से छूटने का इसके अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है।

असुर्यानाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभि गच्छन्ति ये के चात्म हनो जनाः॥
॥ यजु ४०—३॥

जो आत्मघात करने वाले पुरुष हैं, वे यहां से शरीर छोड़ कर उन लोकों में जाते, हैं, जो प्रगट अन्धकार से भरे हुए हैं, और असुरों के योग्य है।

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानु पश्यति।
सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥
॥ यजु० ४०—६॥

जो आत्मा में समस्त प्राणियों को और समस्त प्राणियों में आत्मा को अनुभव करता है, वह किसी से घृणा नहीं करता।

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभू द्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः॥
॥ यजु० ४०—७॥

जिस अवस्था में एकता का दर्शन करने वा ज्ञानी पुरुष को सब प्राणियों में आत्म तत्व ही प्रती होने लगता है, उस अवस्था में उसे मोह और शो नहीं रहता।

लालच मत करो

(ले०-धर्माचार्य श्री सच्चिदानन्द शास्त्री, बदायूं)

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

इस मन्त्र का सार यह है, संसार परमात्मा से व्याप्त है, त्याग पूर्वक भोगो और लालच मत करो। आज हम इस लालच के विषय पर ही विस्तार से विचार करेंगे।

लालच क्यों उत्पन्न होता है ? जब हमारा ध्यान इस बात पर जाता है, उस समय हमारे सामने दो विचार उपस्थित होते हैं, एक तो यह कि अपने अन्दर उत्पन्न हुई इच्छाओं का पूर्ण होना और दूसरे यह कि इच्छा पूर्ति से भी ज्यादा अपने पास एक अपार सम्पत्ति इकट्ठी करके उसे देख देख कर खुश होना, चाहें उस सम्पत्ति का उपयोग बिलकुल भी न किया जाय। एक आदमी तो सिर्फ इस लिये धन कमाता है, कि मेरी इन्द्रियों की इच्छाओं की पूर्ति होती रहे और मेरी इन्द्रियों को आराम मिले मुझे किसी प्रकार से दुःख न हो। दूसरा इसलिये कमाता है कि अपार सम्पत्ति को देख देख कर मैं प्रसन्न होऊँ अर्थात् कंजूसी के भाव के लिये, यह उस धन को कंजूसों की तरह अपने पास जोड़ता रहता है और जोड़ते जोड़ते ही उसकी यह लीला खत्म होजाती है, उसका स्वयं उपयोग नहीं कर पाता है, और न दूसरे के लिये ही उपभोग करने देता है।

इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है ? यदि लौकिक दृष्टि से देखा जाय तो आदमी इन्द्रियों के सुख के लिये उस धन का उपयोग कर लेता है, वही श्रेष्ठ है। कंजूसी करने वाला लौकिक दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं माना जाता।

वास्तव में देखा जाय तो कंजूस और इन्द्रियाराम में कोइ श्रेष्ठ नहीं है। यदि कोई श्रेष्ठ नहीं है, तो कोई यह कह सकता है, कि धन की सत्ता का होना व्यर्थ है। नहीं, ऐसी बात नहीं है। बात यह है, कि हम उस धन का ठीक उपयोग नहीं जानते हैं। यहाँ धन से तात्पर्य केवल रुपये पैसे से नहीं है, बल्कि उन वस्तुओं से है कि जो हमारे व्यवहार में प्रतिदिन आती हैं, धनका ठीक उपयोग हम किस तरह से कर सकते हैं और इसका ठीक उपयोग करते हुए लालच में नहीं फंस सकते हैं, इस पर विचार करते हुए उपनिषद हमको बतलाती है कि उपयोग करने वाली वस्तु यानी धन में से अपनापन छोड़ दो। जब तक हम अपनापन नहीं छोड़ेंगे तब तक हम इसी लालच के बन्धन में फंसे रहेंगे और नष्ट हो जावेंगे।

जैसे किसी के बाग में बहुत फल फूल लग रहे हैं। मान लीजिये एक आदमी उधर से गुजरा। उस ने उन फल फूलों को देखा और देखते ही उसके अन्दर लेने की इच्छा उत्पन्न हुई। परन्तु वह डरता है कि कहीं स्वामी देख न ले। उसने चारों ओर अच्छी तरह से देखा कि स्वामी वहाँ पर नहीं है, उसके अन्दर से डर जाता रहा और उसने फलों को जाकर तोड़ लिया। यहाँ पर देखना यह है, कि जब तक उसके अन्दर डर था, तब तक उसने फलों को नहीं तोड़ा, परन्तु जब उसके अन्दर से डर जाता रहा उसने झट फलों को तोड़ लिया। कहने का तात्पर्य है, कि जब तक उसके अन्दर डर था, तब तक उसके अन्दर यह भाव था कि इसके अन्दर स्वामी के बाग का अपनापन है, इसलिये कहीं फल तोड़ते हुए पकड़ा न जाऊँ, उसने चारों ओर देखा और निश्चय किया कि कोई नहीं है। निश्चय करतेही हाथ बढ़ा कर तोड़ लिया अर्थात् स्वामी के भाव का अपनापन नष्ट हो गया और फल तोड़ने के लिये वह स्वतन्त्र हो गया। यहाँ पर उस मनुष्य ने स्वामी को न देख कर चोरी की है। इसी तरह जीव चोरी कर रहा है।

जीव देखता है कि वह धन तो मेरा है और अपना समझ कर उसका उपयोग करता है।

उस धन का उपयोग नाना प्रकार के भोग विलास और ऐश आराम में प्रयोग करता है। कंजूसी करने वाला बचा २ कर कंजूसी करता है। इसी लिये जीव दुःखी है, हम किसी चीज को न समझते हुये अपनी ओर से उसका सदुपयोग कर रहे होते हैं, परन्तु, वास्तव में हम सदुपयोग न करते हुए दुरुपयोग ही करते हैं। इसी लिये हम दुखी हैं। इस दुरुपयोग करने का क्या कारण? हमारी ना समझी, अज्ञानता, मूर्खता, ही इसका कारण है। इसके लिये उपनिषद्-कार ने सीधा रास्ता बताया है, वह यह है, कि हम अपने ऊपर किसी न किसी मालिक की सत्ता समझें।

इस त्रिलोकी में जो कुछ भी हमको दिखाई पड़ता है, वह सब ईश्वर के शासन में है, हमारा उस में कुछ भी अधिकार नहीं है। यदि हम ऐसा भाव करके वस्तुओं का उपयोग करेंगे तो हम लालची, शराबी, जुआरी, चोरी इत्यादि के दुर्गुणी होने से बच कर ठीक रास्ते पर चल पड़ेंगे।

जितने संसार के दुर्गुण हैं, वे सब धन के ठीक उपयोग न होने से ही हैं, हम अपना धन व्यर्थ के शान शौकत के सामान, विषय भोग विलास इत्यादि में फेंक देते हैं। ऐसा क्यों है? केवल धनका ठीक उपयोग न होने से। जब हम यह समझेंगे कि यह धन परमात्मा का है और उसने केवल जिन्दगी को चलाने के लिये ही यह धन हमको दिया है, और ज्यादा हमको अधिकार नहीं है, तब हम ईश्वर से डरते रहेंगे और इसका केवल अपने जिन्दगी के लिये उपयोग करते हुए बाकी धन को दान इत्यादि शुभ कार्य में लगा देंगे। इस लिये श्रेष्ठ वही है, जो ईश्वर को स्वामी मान कर धनका उपयोग कर रहा है, यह आध्यात्मिक दृष्टि है, लौकिक दृष्टि तो हम ऊपर दे ही चुके हैं।

इसलिये जीव को यही उचित यही है, कि इस संसार में ईश्वर की सत्ता को अपने सामने रख कर धन का उपयोग करे। जब धन को बुरे रास्ते में लगाने लगे तभी ईश्वर से डरे और उससे शुभ रास्ते में ले जाने का रास्ता पूछे। जब जीव ऐसा करेगा तभी वह लालच इत्यादि अवगुणों में न फंसता हुआ संसार सागर से सुख पूर्वक पार हो जावेगा।

गरीबी की गोद में पला हूँ

(अमेरिका के राष्ट्रपति की आत्मकथा)

अमेरिका के राष्ट्रपति विलसन अपनी आत्म कथा बताते हुए कहते हैं—"गरीबी मेरी माता और अभाव मेरा हिंडोला है। मेरा दिल जानता है, कि जब माता के पास रोटी न हो तब उससे माँगना कितने दर्द से भरा हुआ होता है। इस साल की छोटी आयु में मुझे घर छोड़ना पड़ा और लगातार ग्यारह साल तक इधर उधर मजूरी करता फिरा। कहीं कोई स्थायी जगह न मिली आज इसके यहाँ तो कल उसके यहाँ। पढ़ने को बड़ा जी चाहता था पर क्या करता, लाचार था। साल भर में एक महीने किसी तरह पढ़ पाता। ग्यारह वर्षों की निरन्तर कमाई कुल मिल कर ८४) रुपये इकट्ठे कर पाया था। मुझे याद है कि कभी मैंने एक रुपया भी अपने शौक मौज के लिये खर्च नहीं किया। एक एक पैसे को इक्कीस वर्ष की आयु तक गिनता रहा। उस समय एक रुपया मुझे इतना बड़ा दिखाई देता था जितना कि आज की रात का चन्द्रमा दिखाई देता है। मीलों पैदल चल कर काम देने के लिये अधिकारी व्यक्ति के सामने दाँत रिरियाने के समय जो पीड़ा मुझे होती थी उसे मैं ही जानता हूं। एक काम लिये मुझे नाटिक शहर से बोस्टन शहर तक १०० मील पैदल चलना पड़ा। इतनी यात्रा में मैंने कुछ मिला कर एक रुपया छै पैसा में काम चलाया। महीनों जंगलों में रहा हूँ, खेत जोते हैं और लकड़ियाँ काटी हैं।"

इस प्रकार गरीबी में पैदा हुआ और अभावों के पलने में झूलने वाला असहाय लड़का अपने निजी प्रयत्न से क्रमशः उन्नति करके अमेरिका जैसे विशाल देश के राष्ट्रपति के पद पर पहुँचा। स्वर्गीय विलसन की आत्मा भाग्य का रोना रोने वाले युवकों से पूछती है, कि मैं बिलकुल असहाय होने पर भी अपने बाहुबल से इतनी उन्नति कर चुका हूँ, फिर तुम क्यों सहायता न मिलने का दुःख रोते हो!

ईमानदारी-दिव्य गुण

(मूल लेखक श्री स्वेट मार्डेन)

देह को फटे टूटे कपड़ों से जैसे तैसे ढके हुए एक दरिद्र बालक ने आगे बढ़ कर एक भद्र रास्तागीर कहा—

"महोदय, दियासलाई खरीद लीजिये"

"मुझे जरूरत नहीं है।"

"एक पैसे की ही तो है, ले लीजिए" इन शब्दों साथ लड़का उस रास्तागीर का मुँह ताकने लगा।

"नहीं मुझे नहीं चाहिए" उस पुरुष ने फिर यही कहा।

'अच्छा, एक पैसे में दो डिब्बी ले लीजिये' लड़के ने फिर कहा।

उसने किसी तरह लड़के से अपना पीछा छुड़ाने लिए एक डिब्बी ले ली। पर जेब टटोला तो देखा कि उसमें छूटा हुआ पैसा नहीं है। उन्होंने डिब्बी वापिस कर दी और कहा—फिर कभी खरीद लूँगा। लड़के ने फिर विनय पूर्वक कहा—"आज लीजिये, पैसा भुना कर मैं ला दूंगा"

बालक की दीन दशा और उसका धेले की दियासलाई खरीदने के लिए इतना आग्रह देखकर उनका दिल पिघल गया। उन्होंने उसे एक अठन्नी भुना लाने के लिये देदी।

लड़के के वापिस आने की प्रतीक्षा में बहुत देर खड़े रहे पर जब बहुत देर होगई और वह न लौटा तो यह सोचते हुए कि अब वह न लौटेगा, कुछ देर और प्रतीक्षा करके वे घर चले गये।

\+ + + +

वह भद्र पुरुष अपने घर पर बैठे हुए थे, नौकर ने आकर कहा कि एक फटे चिथड़े पहने हुए लड़का आपसे मिलने के लिये कहता है। उन्होंने उसे उत्सुकता पूर्वक अन्दर बुलवाया। यह लड़का उस दियासलाई वाले से भी अधिक दुर्बल था। एक एक पसली चमक रही थी और चेहरा सूख रहा था। देखने से मालूम होता था वह बेचारा बहुत ही कठिनाई से अपनी गुजर करता है। लड़के ने सामने आकर उन से नम्रता पूर्वक पूछा—"मेरे भाई से क्या आपने ही दियासलाई खरीदी थी?"

"हाँ"

"तब लीजिए, इतने पैसे बचे हैं। वह आ नहीं सकता उसकी दशा अच्छी नहीं है। वह एक गाड़ी से टकरा गया और गाड़ी उसके ऊपर होकर निकल गई। उसकी टोपी, दियासलाइयाँ और आपका बाकी पैसा न जाने कहाँ गया। उसके दोनों पैर चूर चूर हो गये हैं, डाक्टर कहते हैं, कि अब वह बच नहीं सकेगा। अपनी इस दुखदायी परिस्थिति में भी उसे सब से अधिक चिन्ता आपके पैसों की थी। मैं उस की सेवा में था कि उसने आग्रह पूर्वक आपका पता लगाकर शेष पैसे आपके पास पहुंचाने के लिए मुझे भेजा है बड़ी कठिनाई से आपका पता लगा सका हूं।" यह कहते कहते कहते उस बालक का गला भर आया। भाई की विपत्ति का स्मरण करके उसकी आँखों में से आँसू छलक पड़े।

पैसे मेज पर रख कर बालक जब वापिस जाने लगा तो उन सज्जन से भी न रहा गया। वह उसे देखने के लिए चल दिये। उन्होंने जाकर देखा कि एक अनाथ बालक घायल दशा में फूस पर पड़ा हुआ है। लड़के ने देखते ही उन्हें पहचान लिया और एक क्षण के लिए अपनी पीड़ा को भूल कर विनय पूर्वक कहा—"महोदय! मैंने अठन्नी भुना ली थी और लौट रहा था कि घोड़े की टक्कर से मैं गिर पड़ा और मेरे दोनों पैर टूट गये। मैं मर रहा हूँ, पर मुझे बड़ा संतोष है कि आप का पैसा आपके पास पहुंच गया। अब मैं शान्ति पूर्वक मर सकूंगा।"

× × ×

घायल बालक अपनी मृत्यु के बिलकुल निकट पहुँच चुका था। उसने पीड़ा से व्याकुल अवस्था में अपने छोटे भाई को बिलकुल असहाय देखते हुए कहा—प्यारे छोटे भाई! प्यारे! मेरी मृत्यु आरही है,

दया की देवी

सन् १८१३ में इंगलैण्ड के जेलखानों की बड़ी बुरी दशा थी। एक एक कोठे में ३०० तक अधनंगी औरतें बन्द कर दी जाती थीं। उनके पास न ओढ़ने बिछाने को होता था, और न पहनने को कपड़े। युवा एवं वृद्ध स्त्रियाँ तथा छोटी उम्र की बालिकाऐं घास और कूड़े के ढेर पर चिथड़ों में लिपट कर सो जाती थीं। उनकी सुधि लेने वाला कोई न था। अधिकारी उन्हें सिर्फ इतना भोजन देते थे, जिससे वे किसी प्रकार जीवित रह सकें।

यह दशा एलिजावेथ फ्राय: नामक एक देवी ने देखी तो उसकी आखें भर आईं। फ्राय लिखी पढ़ी थीं, और उनके पास आनंद और ऐश्वर्य की जिन्दगी बिताने योग्य बुद्धि थी। परन्तु जीवन के मधुर फल को चुपचाप खुद ही कुतर कुतर कर खाते रहना उन्हें पसन्द न आया। सामने फुल-वारी पर दृष्टि गई तो तो देखा कि पुष्प अपने सुन्दर जीवन को दूसरों के सुख के लिये अर्पित करता हुआ मुस्करा रहा था। फ्राय ने अपना जीवन इन दुखियों के निमित्त दे दिया। उन्होंने बन्दीग्रह की पीड़ित बहिनों के उद्धार का व्रत लिया।

सरकार की सहायता से उन्होंने जेल में शिक्षा का प्रचार करना आरंभ किया। वन्दीग्रह की नारकीय यंत्रणा भोगनेवा ली स्त्रियों को पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ कि कोई उनके परित्राण करने के लिये भी प्रयत्न करेगा। परन्तु जब पाप और अज्ञान में डूबी हुई, मूर्तियों को फ्राय ने प्रेम पूर्वक अपने गले लगाया और उन्हें शिक्षा देना आरंभ किया तो उनकी जीवन दिशाऐं ही बदल गईं। कुछ ही मास के प्रयत्न ने उन नारकीय पशुओं को शान्त, निर्दोष और पवित्र बना दिया। सुधार का विस्तार हुआ। सरकार उनके कार्य को देखकर प्रभावित हुई, और उसने इस प्रकार की शिक्षा कानून द्वारा जेलखानों में जारी करदी।

आज श्रीमती फ्राय इस संसार में नहीं हैं। परन्तु उनके पवित्र प्रेम का पौधा तप्त और दुखी प्राणियों को शीतलता प्रदान करने के लिये जीवित है। उनकी योजना इस समय समस्त सभ्य संसार में काम में लाई जा रही है।

भय्या? तुम्हारा क्या होगा? तुम्हारी देख भाल कौन करेगा? हाय! अब तुम किस प्रकार निर्वाह करोगे? यह कहते हुए उसने अपने छोटे भाई को गले लगा लिया, उसकी नेत्रों में से अविरल अश्रु धारा बह रही थी।

उन भद्र पुरुष से यह दृश्य न देखा गया। उन्होंने कहा-बेटा! चिन्ता मत करो, सुख पूर्वक परमात्मा की गोद में जाओ, मैं तुम्हारे भाई को आश्रय दूंगा। घायल की जबान बन्द हो चुकी थी, पर उसने अपना बल समेट कर उनकी ओर देखा और फिर सदा के लिये सोगया। उसकी अंतिम चितवन में धन्यवाद और कृतज्ञता के भाव भरे हुए थे।

वह छोटा बालक गरीब था। जो पैसे कमाता था, उसमें दोनों भाई आधे पेट भोजन कर पाते और पास में लिपट कर सो जाते। फिर भी उसका हृदय बड़े बड़े धनपतियों की अपेक्षा अधिक ईमानदार है। वह दुखी था फिर भी सचाई और ईमानदारी का मूल्य समझता था। येही सद्-गुण हैं, जो मनष्य को देवता बना देते हैं और इन्हीं के कारण मनुष्य इस लोक और परलोक में पूज्य माने जाते हैं।

सांस कैसे लेनी चाहिये?

(ले० श्रीनारायणप्रसाद तिवारी 'उज्ज्वल' कान्हींबाड़ा)

साँस लेने का स्वाभाविक यंत्र नासिका है। किन्तु अज्ञान वश लोग मुख से भी साँस लेते हैं, फलतः इस नियम विरुद्ध कार्य का उन्हें दण्ड भी मिल जाता है। योग शास्त्र का उपदेश है, कि श्वांसोच्छ्वास क्रियाऐं नासिका से करो। किन्हीं विशेष प्राणायामों में जहाँ मुँह से साँस लेने का विधान है, वहाँ भी वायु छोड़ने का मार्ग नासिका ही निर्धारित किया गया है। स्वभावतः मनुष्य नाक द्वारा श्वांस लेता है। छोटे बालक प्रकृति दत्त बुद्धि के अनुसार इसी नियम का अनुसरण करते हैं। बड़े होने पर मनुष्य जैसे अन्य अनेक कुटेवें सीखता है। वैसे ही वह इस संबंध में भी नियमोल्लंघन करता है। देखा जाता है, कि थोड़ी सी मेहनत करने पर हाँफने लगते हैं। स्त्रियाँ पानी भरते हुए, आटा पीसते हुए, अन्न कूटते हुए या और कोई इसी तरह का काम करते हुए मुँह खोल कर हांफने लगती हैं। कमजोर आदमी उठते बैठते लम्बी सांसें छोड़ते हैं, वे नहीं जानते कि हम इससे अपने को और अधिक कमजोर बना रहे हैं। अंग्रेजी में एक कहावत है, कि "प्रत्येक 'आह" का अर्थ हृदय का एक बूंद खून सुखाना है" उस उक्ति का वैज्ञानिक रहस्य यह है कि मुंह से सांस छोड़ने पर बहुत हानि होती है। बीमार लोग जरा से दुख दर्द में कराहने लगते हैं, और अनजान में इस कुटेव को अपनाते हैं। दमा को असाध्य इसलिये बताया जाता है कि उसका रोगी मुंह से ही साँस लेता रहता है, और जो घायल अपने घाव को हर वक्त घिसता रहे उसका अच्छा होना प्रायः कठिन ही समझना चाहिये।

हमारे फेफड़े बहुत ही कोमल हैं। इसलिये उनकी रक्षा के लिए प्रकृति ने पर्याप्त व्यवस्था कर रखी है। हवा में मिला हुआ कूड़ा कचरा या अन्य हानिकर रोगजन्तु भीतर न जाने पावें, इसीलिये नाक में बालों की छलनी लगादी गई है, ताकि वह कचरा इनमें ही उलझा रह जाय। नाक में एक प्रकार की श्लेष्मा रहती है, जो कचरा बालों में छनने से भी रह गया था, वह इस श्लेष्मा में चिपक जाता है। इसके बाद भी जो बचता है, वह लम्बी श्वांस नलिका में रुक जाता है, और कफ या छींक के रूपमें निकल जाता है। फेफड़े में अन्ततः जो वायु पहुँचती है, उसका पूरा संशोधन हो जाता है, किन्तु मुख से वायु लेने पर ऐसा नहीं हो सकता क्यों कि मुँह में न तो बाल हैं, और न छिद्र इतना कम चौड़ा है, कि धूलि कणों को उसकी दीवारों से चिपकना ही पड़े। इसलिये जैसी तैसी हवा जब भीतर जाती है तो उसका कचरा कंठ और श्वांस नलिका में इकट्ठा होता है, और बहुत सा भाग फेफड़े में भीतर तक सीधा चला जाता है। इसलिये मुख से सांस लेने वाले अक्सर चेचक, दमा, क्षय, आदि के शिकार हो जाते हैं। डाक्टरों का अभिमत है कि इन्फ्लुऐंजा, हैजा, प्लेग आदि के दिनों में मुँह से सांस लेने वालों की अपेक्षा नाक से सांस लेने वाले कम मरते हैं। ऋतुओं का प्रभाव वायु पर पड़ता है। इसलिये सर्दी में ठंडी और गर्मी में गर्म हवायें चलती हैं। इनका ताप, फेफड़े के ताप से बहुत न्यूनाधिक होता है। यह सर्द गर्म हवाऐं जब नाक की लम्बी नली द्वारा फेफड़ों तक पहुँचती हैं, तो उनकी गर्मी इतनी ही रह जाती है, जितनी कि फेफड़ों को चाहिये। बढ़ा या घटा हुआ तापमान श्वांस नाली की गर्मी से ठीक हो जाता है। किन्तु मुख द्वारा सांस लेने से ऐसा नहीं हो सकता है, क्यों कि एक तो इसमें एक साथ बहुत सी हवा जाती है, जिसको ताप आसनी से ठीक नहीं किया जा सकता, दूसरे कंठ और फेफड़ों का फासला बहुत थोड़ा है इतने थोड़े स्थान की शक्ति भी थोड़ी ही होती है। इस प्रकार मुँह से ग्रहण की हुई वायु

अपनी सर्दी गर्मी को फेफड़ों तक पहुँचा कर उसका पर्याप्त अहित करती है। यही कारण है, कि रात को मुँह खुला रखकर सोने वाले जब सबेरे उठते हैं तो गले में सूजन, दर्द, खुजलाहट और सांस में भारीपन का अनुभव करते हैं।

तालाब और कुए के जल में जो अन्तर है वही अन्तर मुँह और नाक ली जाने वाली साँस में है। एक अशुद्ध है, तो दूसरी शुद्ध, एक से फेफड़े का पोषण होता है तो दूसरी से नुकसान। मुँह से सांस लेने की आदत पड़ जाने पर नासिका मार्ग बेकार पड़ा रहता है, और उसमें रुके हुए पानी की तरह खराबियाँ इकट्ठी होती रहती हैं। यह खराबियाँ बढ़कर कभी कभी भयंकर रोगों का रूप धारण कर लेती हैं। नकसोरे रुक जाना, सारे दिन नाक से खूं खूं करते रहना आदि व्याधियाँ सूचित करती हैं, इस व्यक्ति ने नासिका मार्ग का उचित उपयोग नहीं किया है।

जो लोग फेफड़ों की रक्षा करना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि सदा नाक से सांस लें। मेहनत करने पर जब श्वाँस की गति तीव्र हो जाय तो भी मुँह खोल कर न हाँफें, वरन् नाक से ही श्वास लें। जंगली जाति की स्त्रियाँ अपने बालकों के होंठ बन्द कर देती हैं। जब बालक सोते हैं, तब वे उसके सिर को आगे नवा देती हैं, जिससे उसका मुँह बन्द हो जाता है और नाक से ही साँस लेने की आदत पड़ जाती है। हम लोगों को उन जंगली स्त्रियों से इस सम्बन्ध में शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। यदि बालक को मुँह खोल कर सोने की आदत पड़ रही हो तो माताओं को उचित है, कि उसका सिर जरा सा आगे को झुका दें, इससे मुँह बन्द हो जायगा; और नाक द्वारा श्वासन क्रिया होने लगेगी, जो कि उनकी तन्दुरुस्ती के लिए बहुत जरूरी है।

मुँह से साँस लेने के कारण जिनकी नाक रुकने लगी हो उन्हें चाहिये कि प्रातः काल एक दो चुल्लू स्वच्छ जल नाक द्वारा ऊपर चढ़ाया करें, या 'लोम विलोम रेचक पूरक क्रिया किया करें। खुली हवा में नाक के एक छेद बन्द करके दूसरे खुले छेद से बार बार साँस लेना और छोड़ना, फिर दूसरे छेद को बन्द करके पहले किये छेद द्वारा बार बार श्वाँस लेना और छोड़ना, यही 'लोम विलोम रेचक पूरक क्रिया' कहलाती है। इससे नाक रुकने की खराबी दूर हो जाती है। जिन्हें कफ की शिकायत रहती हो उन्हें थोड़ा सा गाय का घी नाक में डालना चाहिये। कितने ही लोग नाक के भीतर के बालों को उखाड़ डालते हैं, वे नहीं जानते कि इस अज्ञान द्वारा फेफड़ों को कितनी क्षति पहुँचेगी। हिन्दुस्तानी कहावतों में "नाक का बाल" प्रिय जनों के अर्थ में उपयोग होता है। परन्तु हम लोग उसे रद्दी या निकम्मी वस्तु समझ कर हटा देते हैं, यह दुख की बात है। पाठक ध्यान रखें स्वास्थ्य की दृष्टि से नाक द्वारा साँस लेना ही उचित है।

---

* * * *

प्रेम व्यवहार संसार का प्रत्यक्ष अमृत रस है। जिसको दो वही प्रसन्न होकर तुम्हारा हो जायगा।

* * * *

साँसारिक आनन्द का लाभ लेने के अतिरिक्त जो लोग पारलौकिक सुख की कामनाओं की पूर्ति की अभिलाषा रखते हैं, वे सर्व प्रथम उदारता, कर्त्तव्य निष्ठा और परोपकारिता का अनुसरण करें।

* * * *

दुर्दिनों के अंधकार के नाम पर रो रो कर अपने उत्साह भंग करने की चेष्टा मत करो, अपने मन को धूप की घड़ी की तरह बनाओ, जो केवल दिन के उज्ज्वल प्रकाश में समय को बताया करती है। अपने जीवन के शुभ संयोगों की बातें ही ध्यान में रखने का उद्योग करो।

* * * *

अस्थिर-स्वप्न

(ले० श्री आनंद कुमार चतुर्वेदी 'कुमार' छिबरामऊ)

मानव ! तुम जागोगे नहीं कब तक सोते रहोगे। शताब्दियाँ बीत गयीं, अब तो उठो, न जाने कितनी बार कोकिल ने अपने गान गाये—केवल तुम्हें जगाने के लिये, न जाने कितने वसंत आये तुम्हें कुछ दिखाने के लिये, परन्तु तुमने कुछ न देखा।

* * * *

क्या तुमने विख्यात 'नालंदा' को नहीं सुना ? कितना विशाल था वह, उसने भी एक बार तारों को चूमना चाहा था, अपने प्रकाश से ज्योत्सना को भी लज्जित करना चाहा था, संसार उसकी ओर मूक दृष्टि से देखता था, परन्तु—आज वही मिट्टी का ढेर बना हुआ है, आज वह वैभव नहीं-केवल ध्वंसावशेष जिन पर अब कटीली झाड़ियाँ उगी हैं।

* * * *

देखा था मुगल साम्राज्य का सूर्य्य, चमचमाता हुआ, कितना वैभवशाली था, वह लक्ष्मी उसके चरण धोती थी, परन्तु कुछ ही समय पश्चात न जाने वह किस अनन्त में विलीन होगया। दिल्ली के किले में आज वह संगीत की मधुर लहर नहीं, वरन् है कुछ बीते दिनों की स्मृति।

* * * *

प्रातःकाल होते ही प्राची दिशा से बादलों के झुंड उड़ चले, कभी गुलाबी तो कभी श्वेत वस्त्र धारण करते थे, परन्तु प्रभाकर की प्रथम मुस्कान के साथ न जाने कहाँ विलीन हो गये।

* * * *

कैसा स्वप्न है। कितना मनोहर और सुन्दर पर अस्थिर और क्षणिक ! मानव, इतना भी न देख सकोगे। इस मोह निद्रा में ही पड़े रहोगे।

इच्छा से ईश्वर की प्राप्ति

'जो माँगेगा, उसे दिया जायगा, जो खोजेगा वह पावेगा जो खटखटावेगा उसके लिये खोला जायगा'।

ये शब्द अक्षरशः सत्य हैं, इनमें जरा भी अलंकार या कल्पना नहीं है, ये शब्द क्या हैं ? ईश्वर के एक श्रेष्ठ पुत्र (महात्मा ईशा के हृदय के उद्गार हैं। चिरकाल की साधना के फल हैं, ये शब्द एक ऐसे महापुरुष के मुख से निकले हैं, जिसने ईश्वर का अनुभव प्रत्यक्ष किया है, जिसने ईश्वर से संलाप किया है, जिसे ईश्वर के सहवास का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। वह सहवास भी एक बार या दोबार नहीं, बल्कि हम आप जितनी बार भी इस मंदिर या गिरजे का दर्शन करते हैं, इससे सैकड़ों गुना अधिकबार।

प्रश्न यह है कि ईश्वर की चाह किसे है ? क्या आप समझते हैं, कि संसार में जितने भी मनुष्य हैं, वे सभी ईश्वर की प्राप्ति के लिये इच्छुक हैं, किंतु उसे प्राप्त नहीं कर सकते ? ऐसा नहीं हो सकता मनुष्य के हृदय में कौनसी ऐसी इच्छा है, जिसका विषय वाह्य जगत में न हो ? मनुष्य साँस लेना चाहता है, इससे उसे साँस लेने के लिए वायु सदा वर्तमान रहती है। मनुष्य को भोजन की इच्छा होती है, और उसकी भूख की निवृत्ति के लिये भोजन भी तैयार रहता है।

मानव जाति के हृदय में जितनी भी इच्छाऐं उत्पन्न होती हैं, उन सभी का उत्पत्ति कारण कोई न कोई वस्तु अवश्य होती है, जो वाह्य जगत में वर्तमान हो। ऐसी परिस्थिति में मनुष्य के हृदय में जब पूर्णता प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न होती है, मनुष्य जब लक्ष्य पर पहुंचने के लिए प्रवृत्ति से परे होने के लिए इच्छुक होता है, तब उसका कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होना चाहिये।

जिस किसी के भी मन में ईश्वर को प्राप्त करने की सच्ची इच्छा जागृत होगई, वह अपने लक्ष्य पर, मानव जीवन के विकास की सीमा पर, अवश्य पहुँच जायगा।

हँसना, सौ रोगों की दवा

(इसी माम अखण्ड ज्योति कार्यालय से प्रकाशित 'स्वस्थ और सुन्दर बनने की विद्या' के कुछ पृष्ठ)

एक अनुभवी विद्वान् का कथन है-" मनुष्यों के शारीरिक धर्मों के आधार पर हम यह घोषणा कर सकते हैं, कि हँसो और मोटे बनो " देखा जाता है, कि मोटे आदमी हँसोड़ होते हैं। लोग समझते हैं कि कदाचित् यह मोटे होने के कारण हँसते हैं, परन्तु वास्तविक बात इससे उलटी होती है। यथार्थ में वे हँसने की आदत के कारण मोटे होते हैं। यह अच्छी तरह अनुभव कर लिया गया है, कि खिल-खिला कर हँसने से अच्छी भूख लगती है, पाचन शक्ति बढ़ती है और रक्त का संचार ठीक गति से होता है। क्षय जैसे भयङ्कर रोगों में हँसना अमृत तुल्य गुणकारी सिद्ध हुआ है। अमेरिका की एक क्षय ग्रस्त तरुणी श्रीमती वाटसन, चारपाई पर पड़ी हुई अपने मृत्यु के दिन गिन रही थी, क्योंकि बहु-मूल्य औषधियों का उस पर कुछ भी प्रभाव न होता था। इस तरुणी के एक परिचित मनोवैज्ञानिक डाक्टर ने उसे खूब खिलखिला कर हँसने की सलाह दी उसने इसे अङ्गीकार कर लिया और हँसने की अमोघ औषधि द्वारा वह मृत्यु के पंजे में से छूट कर बिलकुल स्वस्थ होगई। एक बार एक व्यक्ति तीव्र ज्वर से पीड़ित पड़ा हुआ था। डाक्टर ने उस पीने का दवा दी, बीमार का एक पालतू बन्दर था। मालिक को दवा पीते देख कर बन्दर को भी उसकी नकल बनाने की सूझी। उसने भी मौका पाकर दवा को पी लिया। दवा कड़वी थी, पीते ही बन्दर बुरा मुंह बनाने लगा और इसमें मालिक का दोष समझ कर उसकी तरफ घुड़कने लगा। बन्दर की तरह तरह की भाव-भंगी देख कर बीमार को बड़ी हंसी आई, वह हँसते हँसते लोट पोट हो गया और इसी तरह लगातार आध घण्टे तक हँसता रहा। डाक्टर ने दो घण्टे बाद आकर देखा, तो बीमार का खतरनाक ज्वर बिलकुल उतर गया था। वह उसी क्षण से बिलकुल अच्छा हो गया।

खिलखिला कर हंसने से मुंह, गरदन, छाती और उदर के बहुत उपयोगी स्नायुओं को आवश्यकीय कसरत करनी पड़ती हैं, जिससे वे प्रफुल्लित और दृढ़ बनते हैं। इसी तरह माँस पेशियों, ज्ञान तन्तुओं और दूसरी आवश्यक नाड़ियों को हंसने से बहुत दृढ़ता प्राप्त होती है। हंसने का मुंह गाल और जबड़े पर बड़ा अच्छा असर पड़ता है। मुंह की माँस पेशियों और नसों का यह सब से अच्छा व्यायाम है। जिन्हें हंसने की आदत होती है, उनके गाल सुन्दर, गोल और चमकीले रहते हैं। फेंफड़ों के छोटे छोटे भागों में अकसर पुरानी हवा भरी रहती है, आराम की सांस लेने से बहुत थोड़ी वायु फेफड़ों में जाती है और प्रमुख भाग में ही हवा का आदान प्रदान होता है शेष भागों में ही सुस्त और निकम्मा पड़ा रहता है, जिससे फेंफड़े सम्बन्धी कई रोग होने की आशंका रहती है। किन्तु जिस समय मनुष्य खिलखिला कर कर हसता है, उस समय फेंफड़ों में भरी हुई पहिले की हवा पूरी तरह बाहर निकल जाती है और उसके स्थान पर नई हवा पहुंचती है, इस क्रिया से फेंफड़े में पलते रहने वाले रोग बड़ी आसानी से भाग जाते हैं और निर्बल भाग शुद्ध एवं सशक्त बन जाते हैं। मुंह की रस-वाहिनी गिलटियां हंसने से चैतन्य होकर पूरी मात्रा में लार बहाने लगती है। पाठक यह जानते ही होंगे कि भोजन में पूरी मात्रा में लार मिल जाने पर उस का पचना कितना आसान होता है।

स्वास्थ्य के विशेषज्ञ एक डाक्टर का कथन है, कि—जो आदमी स्वस्थ रहना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि हँसने की आदत डलें। यह पेट की सब से बढ़िया कसरत है, जो पाचन क्रिया को सुधार कर आमाशय और आंतों की सफाई करती है। पुराने कब्ज के मरीज इस व्यायाम से अच्छे होते देखे गये हैं। शरीर को निरोग रखने और ज्ञान तन्तुओं को पोषण करने के लिये मेद की आवश्यक मात्रा देह में रहनी चाहिए। उसके घट जाने से ज्ञान तन्तुओं का पोषण रुक जाता है और बढ़ जाने से अङ्ग अधिक मोटे होकर भार रूप बन जाते हैं।

हँसने से मेद की वृद्धि होती है और यदि बढ़ा हुआ है तो घट जाता है। हँसने के जोश अथवा आवेश की छोटी मोटी आँधी से तुलना की जा सकती है। आंधी से जमे हुए बादल बिखर जाते हैं वैसे ही हंसी के आवेश से तन्तुओं से एक प्रकार की विशेष हलचल मच जाती हैं। उससे मस्तिष्क पर जमे हुए चिन्ता के दुखदायी बादल जो बहुधा मस्तिष्क को अन्धकारमय कर देते हैं, बिखर जाते हैं।

हँसने की कला सीखने में कुछ विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। साइकिल पर चढ़ने या तैरने में जितना अभ्यास करना पड़ता है, हँसने की आदत डालने में उससे भी कम परिश्रम करना पड़ता है। जब अकेले में बैठो तो आप बीती या दूसरे पर बीती मनोरञ्जक घटनाओं का स्मरण करो और अपने आप हँस पड़ो। हँसी न आवे तो भी हँस पड़ो। दर्पण के सामने बैठ कर हँसो हँसने में कितने सुन्दर लगते हो यह देख देखकर खूब प्रसन्नता की हँसी हँसो। दूसरों से बात करो तो प्रसन्नता पूर्वक जरा हँस कर मुंह खोलो। इस बात को बार बार याद करलो कि "जब किसी से बात करूंगा मुसकराते हुए करूंगा"। इसका प्रयोग अपने घर से आरम्भ होना चाहिए। घर के छोटे बच्चों को इकट्ठा करो और उनसे बात चीत करो। अपने छोटे से ज्ञान के आधार पर वे तुतलाती हुई भाषा में जो उत्तर देंगे उसमें हंसने का काफी मसाला मिलेगा। विवाहित हो तो पत्नी के साथ हँस हँस कर प्रेमालाप कीजिए। कहानियां कहने का अभ्यास कीजिए। छोटे बच्चे ही नहीं घरके बड़े बूढ़े भी सुनने के लिए इकट्ठे हो जायेंगे। अपनी हँसी में प्रेम का पुट देते रहिए। निस्वार्थ और सरल हृदय से रहिए। दिन में कम से कम एक बार खिलखिला कर हँसिए। आप के मन पर लदे हुए कुविचारों का बोझ उतर जायगा और मन हलका हो जायगा। इसका जो जादू जैसा प्रभाव स्वास्थ्य और सौन्दर्य पर पड़ेगा उसका सुखदायक फल, आप एक दो सप्ताह बाद देखने लगेंगे।

परिस्थितियों का प्रभाव

(महात्मा जेम्स ऐलन)

मैं दो ऐसे मनुष्यों को जानता हूं जो जीवन काल के आरम्भ में ही वर्षों की कष्ट से बचाई हुई सम्पत्ति खो बैठे। उनमें से एक बहुत ही दुखी हुआ और बिलकुल निराश और पागल होगया। दूसरे ने प्रातः काल के समाचार पत्र में यह पढ़ा कि वह बैंक जिस में उसने रुपया जमा किया था, फेल हो गया और उसका सर्वस नष्ट हो गया उसने शान्ति पूर्वक दृढ़ होकर कहा—"ठीक है" अब तो यह हाथ से निकल ही गया। शोक से पुनः प्राप्त नहीं हो सकता। परन्तु कठिन परिश्रम से हो सकता है।" वह अपने में नवीन शक्ति का संचार कर काम पर गया और कुछ ही दिनों में फिर धनाढ्य बन गया। साथ ही पहला मनुष्य जो अपनी द्रव्य हानि पर छाती पीटता और अपने दुर्भाग्य को कोसता था, विपत्ति का आखेट बना रहा। विपत्ति का क्यों, वास्तव में अपने निर्बल और गुलामी के विचारों का शिकार बना रहा, धनकी हानि एक के लिए तो विपत्ति का कारण हुई और दूसरे के लिए उत्साह की बात हुई। क्योंकि एक ने उस घटना को अन्धकार मय और निराशा का जामा पहनाया और दूसरे ने उस घटना को शक्ति आशा और नवीन उद्योग के भावों के आवरण से ढक दिया।

अगर परिस्थितियों में सुख दुख पहुँचाने की शक्ति होती तो वे सब मनुष्यों को तरह सुखी और दुखी बनातीं। परन्तु एक ही परिस्थिति का भिन्न २ मनुष्यों के लिए अच्छा या बुरा प्रमाणित होना यह बात सिद्ध करता है कि भलाई बुराई करने की शक्ति उस घटना चक्र में नहीं है, वल्कि उस मनुष्य के मस्तिष्क में है, जिसकोउसका सामना करना है। जब आप इस बातका अनुभव करने लगेंगे तो आप अपने विचारों पर शासन करने और अपने मस्तिष्क को नियम बद्ध तथा अव्यवस्थित बनाने लगेंगे और परिस्थितियों से प्रभावित न होंगे।

पाठकों का पृष्ठ

हमारा व्यापार इस साल बहुत बढ़ गया है। पिछले कई वर्षों से बहुत नुकसान था, किन्तु अब स्थिति बदल गई है। पिताजी कहा करते हैं, अखण्ड ज्योति गङ्गाजी के समान पूजनीय है, यह ऋद्धि सिद्धि देने वाली है, वे सब घर वालों को इकट्ठा करके संध्या समय इसके कुछ पन्ने पढ़ कर सुनाया करते हैं।

—तेजबल चोरड्या, झूथना।

\+ + + +

जिस घरमें हम किराये पर रहते हैं, उसमें अभी इसी मास सात व्यक्ति हैजा से मर गये। मेरे पति और पाँच वर्षीय एक मात्र पुत्र को भी हैजा हुआ था पर वे अच्छे हो गये। मैं समझती हूं कि अखण्ड ज्योति द्वारा हमारे हृदयों में जो धर्म का अङ्कुर उद्भव हुआ है, उसी की कृपा से हम लोगों की रक्षा हुई है।

—विमला विशारद, देवगढ़।

× × × ×

इस साल हमारा घर खुशी से फूला नहीं समाता-मेरा लड़का और भतीजा पास हो गये। घरमें दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं, बधाइयों का ताँता है। चाँदी के व्यापार में अच्छा नफा रहा। दादी अंधी हो गई थी, डाक्टर ने उसके नेत्र ठीक कर दिये हैं। हमारा विश्वास है कि अखण्ड ज्योति घर में बरकत लाई है।

—प्रभुदयाल गर्ग, चिचोड़ा।

\+ + + +

मेरा स्वभाव कुछ खिन्न सा ही रहा करता था, लेकिन जब से "अखण्ड ज्योति" पढ़ता रहा हूं तब से मुझ में विशेष परिवर्तन हो रहा है।

—मङ्गल चन्द भण्डारी 'सोजन'

\+ + + +

मेरे एक ताऊ हैं, जिनसे कई प्रकार के प्रश्न पूछा करता हूं और वे यथाशक्ति सब का उत्तर दे दिया करते थे, परन्तु जब से मैंने "अखण्ड ज्योति" मंगानी शुरू की-उनके प्रश्नों में बड़ा भारी परिवर्तन हो गया है। अब मैं जब कभी उन से कोई प्रश्न पूछ बैठता हूँ तो वे झट कह दिया करते हैं—"अखण्ड ज्योति" के फलाने अङ्क में क्यों नहीं देख लेते? और जब मैं सचमुच उस अङ्क को उठाता हूँ तो मेरे सामने शान्तिप्रद उत्तरों का तांता सा बँध जाता है। अब मेरे ताऊ को प्रश्नों का उत्तर देने से मुक्ति भी मिल गई है।"

—यदुनन्दन प्रसाद, पौड़ी।

\+ + + +

अखण्ड ज्योति के पठन से अथवा भगवान की दया से-प्रभू में विश्वास अखण्ड हो गया है, इससे साहस की वृद्धि हुई। नहीं तो इस साल जितनी आपत्तियां मुझ पर पड़ीं और कोई होता तो न मालूम क्या करता। मैं अखण्ड ज्योति को अपना परम गुरु मान कर वन्दना करता हूँ

—प्रेम नारायण शर्मा गिरदावर कानूनगो, लश्कर।

× × × ×

अखण्ड ज्योति पढ़ने से बुद्धि में बड़ी सात्विकता आगई है। मन हर घड़ी प्रसन्न रहता है। साथी पूछते रहते हैं कि आज कल तुम्हें क्या मिल गया है? मैं उत्तर देता हूँ कि मैंने एक निःस्वार्थ और सच्चा सहायक मित्र प्राप्त कर लिया है।

—भगवती नन्दन वर्मा, पिपरोंदा

× × × ×

मुझे इस पत्रिका से बड़ी शान्ति मिलती है। जब पढ़ता हूं तो ऐसा प्रतीत होता है, कि कोई धर्म गुरु सामने बैठ कर समझा रहा है। प्रतीत होता है प्रभु ने मेरे आत्म कल्याण के लिए ही इसकी रचना की है।

—विभा नारायण, मुरादाबाद।

मन की शक्ति

(ले०-श्री रघुनन्दनसिंह जी, सबहद)

मन में भरी है जो असीम शक्ति तेरे 'लाल',
पा ले तू उसी को तो विपत्ति चली जायगी।
ज्ञान सदाचार से मिलेगा शान्ति-लाभ तुझे,
चित्त-वृत्ति चंचला न होने यदि पायेगी ॥
वृत्तियों का रोकना ही जीत लेना मन का है,
वासना-विहीनता ही सिद्धि दिलवायेगी ।
मन ही के हारने से हार, जीत जीतने से,
जीत से प्रकृति नटी हाजिरी बजायेगी ॥ २ ॥

हृदयेश

(ले०-मुरलीधरप्रसादसिंह 'मदन' सैदपुरी)

हृदयेश, जग-जंजाल से है हृदय व्याकुल हो रहा।
करुणा करो करके कृपा करुणेश, दुख-भञ्जन महा।
पाया नहीं विश्राम मैंने जन्म जब से है लिया।
तुझ से निठुर अब नाथ से हा! नेह का नाता किया॥
हम को कठिन अपमान अब इस जगत में सहना पड़ा।
अतएव प्रभु,तब निकट कुछ कर-जोड़ कर कहना पड़ा।
बस सोच लो सब से प्रथम सम्बन्ध मेरा नित्य है,
जिससे तुम्हारे स्नेह का, मम हृदय होता भृत्य है॥
यह दुष्ट मन तव पाद-पद्मों से विलग होता कहीं,
पर अन्त में तव पद-कमल का मधुप बन जाता सही॥

प्यार का प्रतिकार

(ले०—यदुनन्दनप्रसाद 'नन्दन' पौड़ी)

आज हँस लूं फिर न जाने है कहाँ रोना मुझे।
आर्त, पीड़ित आँसुओं से आस्य है धोना मुझे।
भोग वैभव का करूं क्या कल इन्हें खोना मुझे।
एक दिन होगा प्रलय के अङ्क में सोना मुझे!!

देखना हिय हो अगर मेरा मुझे पहिचान ले।
प्यार, अन्दर ही छिपी है वेदना तू जान ले॥
चल रहा हूँ इस जगत में जर्जरित अरमान ले!
प्रेम पीछे लुट गया मैं बावला जग जान ले!!

जा रहा हूँ इस जगत से वेदना का भार लेकर।
भार का दुख; दर्दमय यह क्षीण सा आहार लेकर।
मानवी-व्यवहार में का मर्ममय यह सार लेकर।
प्यार के उपलक्ष में एक दर्द का उपहार लेकर!!

भ्रांति

(ले०—सोमनाथ नागर, मथुरा)

विश्व का विश्वास क्या है साँस आया या न आया
लाड़ली क्यों कर बनी तू री विनश्वर मनुज काया।
क्या लिखा है भाग्य में यह जानता कब जीव रे
इस अँधेरे कूप में रे! क्यों तुझे रहना सुहाया
आज तो जुगनूं सरीखा क्षण चमक का ले सहारा
स्वर्ग पथ को खोजता है मूढ़ नर कर्त्तव्य द्वारा
रे खिलोने! धिक तुझे कुछ भी नहीं अधिकार पाया
व्यर्थ ही जीवन मिला, पथ में पड़ा जिसके दुधारा

परलोक विद्या

(परलोक विद्या के आचार्य श्री० बी० डी० ऋषि
B. A., L L. B.)

'मरणोत्तर जीवन' के सम्बन्ध में ज्ञान वृद्धि के लिए अनेक वर्षों से परिश्रम हो रहा है और इस में जनता ने काफी दिलचस्पी भी ली है, किन्तु उस की यह दिलचस्पी क्षणिक रही है। अब तक के अनुसंधान का श्रेय उन सच्चे जिज्ञासुओं को ही दिया जा सकता है, जिन्होंने तत्परता पूर्वक इधर अन्वेषण किये हैं।

विचार पूर्वक देखने से प्रतीत होगा कि यह ऐसा साधारण विषय नहीं है, कि किसी मनुष्य का थोड़ा सा फुरसत का वक्त ही इसके लिए पर्याप्त हो। जिन्होंने इस सम्बन्ध में घण्टा आध घण्टा नित्य कुछ काल तक अपना समय लगाया है, वे जानते हैं कि इतने से ही परिश्रम से उन्हें 'माध्यम' बनने की कितनी योग्यता प्राप्त हुई है। यदि लगातार इस सम्बन्ध में पूरी तत्परता के साथ खोजें तो सचमुच बहुत अधिक प्रगति होगी। यदि कुछ अन्वेषक इस विषय को अपना पेशा न बना कर पूरी खोज करने पर जुटजावें तो आवश्यमेव इस विषय के गुह्य रहस्यों का उद्घाटन होने की संभावना है।

निपुण 'माध्यमों' का सहयोग भी इसके लिये आवश्यक है। हमारे देश में बहुत से व्यक्ति 'स्वयं लेखन प्रणाली' तथा अन्य प्रयोगों द्वारा अपने सम्बन्धियों से वार्तालाप करने में सहायता प्राप्त करते हैं, किन्तु वह दूसरों की अपने सम्बन्धियों से बात चीत करने में सहयोग देते हुए हिचकिचाते हैं। आज देश में ऐसे माध्यमों की जरूरत है जो आत्मा के लौटने की सच्चाई साबित करसकें। वास्तवमें आत्माओं का मध्यस्थ बनने की योग्यता अनेक मनुष्यों में है और वह समुचित देख भाल से बढ़ाई भी जा सकती है। विदेशों के अनेक 'माध्यम' ऐसे उपयोगी साबित हुए हैं जैसे खगोल विद्या के लिए दूरवीक्षण यन्त्र। समुचित देख भाल से भारत में भी ऐसे 'माध्यम' तैयार हो सकते हैं, जो अनेक वियोग से पीड़ित दुखी हृदयों में शान्ति की बूंदें छिड़क सकें। योरोप और अमेरिका में इस आध्यात्मिक मध्यस्थता द्वारा मृत आत्माओं की वाणी सुनी जाती है, उन्हें छुआ जाता है, फोटो लिये जाते हैं, और आँखों से देखा जाता है, तब क्या भारत में ऐसा नहीं हो सकता? इस देश में 'इण्डियन स्प्रिचुअलिस्ट सुसाइटी' तथा अन्य संस्थाओं, पत्रों एवं व्यक्तियों द्वारा प्रयत्न हो रहा है। मैं ऐसे अनेक मनुष्यों से मिला हूं जो अपने प्रयोगोंसे मृतात्माओं के साथ निकटता स्थापित कर चुके हैं। कई कारणों से वे जनता में प्रसिद्ध नहीं होना चाहते, किन्तु वे मरणोत्तर जीवन के सम्बन्ध में कायल हैं।

सर ए०सी० डायलने कहा है कि हम मृतआत्माओं का पर्यवेक्षण नहीं करते वरन् वे हमारा करती हैं। यह सत्यता तब बिलकुल स्पष्टहो जाती है, जब हम देखते हैं कि माध्यमों में मृतात्माओं द्वारा कितनी सहायता पहुंचाई जाती है। यह भी अनुभव किया जाता है कि हम मृत मनुष्य अपने सम्बन्धियों से अपना सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कितने व्यग्र हैं, किन्तु जीवित सम्बन्धियों के सहयोग के अभाव में वे ऐसा करने में समर्थ नहीं होते। वे मनुष्यों की यथा शक्ति मदद करते हैं, और जीवित प्रियजनों के संसर्ग में आकर प्रसन्न होते हैं।

वर्तमान भौतिकवाद से उत्पन्न हुई अशान्ति को मिटाने के लिये परलोक विद्या बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इसके द्वारा जीवन और मरण के बीच की भयानक खाई को पाटा जा सकता है, मृतात्माओं के निकटत्व पर विश्वास करने वाले भारत वासियों का यह परम कर्तव्य है, कि इस विद्या को अपने अध्यवसाय से इतनी उन्नत बनादें कि यह संसार को आध्यात्मिकता का एक नवीन संदेश देसके।

संध्योपासना की विधि

(ले० पं० भोजराज शुक्ल ऐतमादपुर, आगरा)

शारीरिक, समाजिक तथा आत्मिक उन्नति के लिये, सुख और शान्ति की प्राप्ति के लिये, धर्मात्मा बनाने के लिये, हमको संसार में जिन साधनों की आवश्यकता है, उनमें सब से पहिला कर्तव्य हमारे लिये सन्ध्या है। बिना सन्ध्या के अर्थात् परमात्मा का आश्रय लिये बिना जो दशा हमारी आजकल होरही है, वह छिपी नहीं है-एक दुःख से छुटकारा नहीं पाते कि दूसरा शिर पर आ विराजता है। धनवान के सन्तान नहीं, संतति वाले के धन का अभाव, जिसके धन, सन्तान दोनों हैं, वह नीरोग नहीं, जो स्वस्थ है उसके धन नहीं, जिसके धन और सन्तति तथा निरोगताभी प्राप्तहै, उसको मुक़द्दमेबाज़ी से अवकाश नहीं मिलता, रात दिन चिन्तित रहता है।

सचमुच दुनियाँ काँय काँय, भाँय भाँय में फँसी हुई है। किसी महात्मा के पास भेड़ पली हुई थी, एक दिन भेड़ को पिलास लगी, उसने महात्मा से कहा कि "मुझे बड़े जोर की पिलास लगी है, कहाँ पानी पीऊँ" महात्मा ने कहा कि पहाड़ी पर झरना वह रहा है, वहां जाकर पानी पी-आ, भेड़ पानी पीने गई, पहाड़ों पर झरने के बहने से पानी का शब्द चुल-चुल हो रहा था, भेड़ चुल चुल शब्द से डर कर बिना पानी पिये महात्मा के पास लौट आई, महात्मा ने भेड़ से पूछा कि पानी पी आई ? भेड़ ने उत्तर दिया कि वहाँ कोई चुलचुल बोल रहा था, उसके भय से मैं पानी न पी सकी, महात्मा बोले "कमबख्त ! तुझे पानी पीना हो तो पी-आ यह चुल चुल कभी बन्द होगी" बस दुनियाँ की चुल चुल कभी बन्द थोड़ेही होने को है। मनुष्य को सब कामों के लिये फुर्सत है, परन्तु सन्ध्या भजन के लिये अवकाश नहीं मिलता, कारण यह कि लोगों को श्रद्धा, विश्वास नहीं है, परन्तु याद रखिये कि जो मनुष्य धर्म का नाश करता है, धर्म उसका नाश करता है धर्म उसका विनाश अवश्य ही कर देता है। अतएव मनुष्य को धर्मात्मा बनना अनिवार्य है इसके लिये प्रथम सीढ़ी सन्ध्योपासन है, बिना परमेश्वर की उपासना के शांति सुख नहीं मिल सकता।

सन्ध्या का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है, समझिये और कीजिये।

अर्थ।

'सन्ध्यायन्ति सन्ध्यायते वा परब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या भली भाँति ध्यान करते हैं वा ध्यान किया जाय परमेश्वर का जिसमें वह सन्ध्या। रात दिन के संयोग समय दोनों सन्ध्याओं में सब मनुष्यों को परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि प्रातःकाल की सन्ध्या से रात्रि भर के और सायंकाल की सन्ध्या से दिन भर के मलों (दुर्वासनाओं) तथा पापों का नाश होजाता है. दिन रात्रि की सन्धि में गृहस्थी का कोई कार्य नहीं करना चाहिये। यदि भूल से कोई कार्य किया जायगा तो उससे अनर्थ होगा. जिसे आयुर्वेद कहता है, यथा सन्ध्या समय भोजन करने से रोगोत्पत्ति, मैथुन करने से कुरूप तथा राक्षसी प्रकृति की सन्तान का जन्म लेना, निद्रासे सुस्ती तथा आलस्य, पठन-पाठन से बुद्धि नाश इत्यादि। यह समय तो केवल परमात्मा के भजन, उपासना ही के लिये नियत किया गया है। इसी नियम को पलते हुए इस्लाम भाई मस्जिदों में, ईसाई गिरजाघरों में, आर्य-समाजी आर्य मन्दिरों में, सनातन धर्मी देवालयों में जाते हैं। प्राय: देखा गया है कि सन्ध्या समय मनुष्य की चित्त-वृत्ति सतोगुणी हो ही जाती है, सांसारिक कार्यों से चित्त को उपराम हो जाता है। एकान्त स्थान, जलाशय व बागों में जाने को चित्त चलायमान होता है।

स्थान।

सन्ध्या के लिये स्थान, निर्जन जलाशय सरिता-सरोवर का तट होना चाहिये। यदि यह स्थान प्राप्त न हो तो अपने मकान ही में कोई स्वच्छ, कमरा या कोठरी नियत कर लेनी चाहिये।

आसन ।

शुद्ध पवित्र समतल भूमि में कुशासन, मृगचर्म या वस्त्र बिछाना चाहिये, जिससे (कि प्राणायाम करते समय जो शारीरिक विद्युत-शक्ति वेग से भ्रमण करने लगती है, उससे पृथ्वी की विद्युत शक्ति मिलने को दौड़ती है, इससे शरीरान्त होजाने का भय रहता है) पृथ्वी की विद्युत-शक्ति शरीर की विद्युत शक्ति से मिलने नहीं पाती। आसन एक दूसरी को प्रथक रखता है, कुशासन में गुण यह भी है कि उस पर बैठने वाले को अर्श (बवासीर) नहीं होने पाती।

सन्ध्या के समय मुख ।

सन्ध्या करते समय प्रातः काल पूर्व दिशा में, सायंकाल पश्चिम-दिशा में अपना मुख रखना चाहिये, क्योंकि दोनों समय यानी सूर्योदय व सूर्यास्त में सूर्य की किरणें रक्त वर्ण होती हैं, जो कि फेफड़ों के अनेक रोगों को दूर करती हैं।

सन्ध्या में विघ्न ।

मैं ६ विघ्न, 'अखण्ड-ज्योति' अप्रैल मास के शीर्षक लेख "जप-योग" में दिखला चुका हूं, उनके पुनः लिखने की आवश्यकता नहीं समझता हूं, बस सबसे बड़ा विघ्न मन की चंचलता है, आप विश्वास रखिये धीरे धीरे अभ्यास करने से मन वशीभूत हो ही जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण महाराज का वचन है :—

असंशय महाबाहो, मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते ॥

हे अर्जुन ! निस्सन्देह मन चंचल है, इसका दवाना कठिन है, किन्तु वैराग्य तथा अभ्यास द्वारा यह वश में किया जा सकता है ! साधन की सम्पति को श्री वशिष्ठ जी ने कहा है :—

हस्तं हस्तेन संपीड्य, दन्तैर्दन्तान्विचूर्ण्य च ।
अङ्गान्यङ्गैः समाक्रम्य, जयेदादौ स्वकं मनः ॥

हाथ को हाथसे मींज कर, दाँतों को दाँतोंसे विचूर्ण कर। तथा अङ्गों से अङ्गों को दवा कर, सबसे पहिले साधक अपने मन को जीते। घवड़ाने की कोई बात नहीं—

सूचनाएँ ।

कार्य की अधिकता से हमारा स्वास्थ्य इन दिनों अधिक कमजोर होजाने के कारण कुछ दिन विश्राम लाभ की इच्छा हुई, अतएव यह अङ्क कुछ जल्दी निकाल दिया गया है। अन्य अखबार जहां किसी असुविधा के कारण लेट होते रहते हैं, अखंड-ज्योति इस प्रकार की आशंका आने पर जल्दी निकलने की नीति का अनुसरण करेगी। एक दिन भी लेट न होने का हमारा प्रयत्न सदा रहता है। —सम्पादक 'अखंड ज्योति'

श्री० बी० डी० ऋषि बी० ए० एल एल० बी० लिखित "स्प्रिचुअलिज्म इन इंडिया' नामक परलोक विद्या संबन्धी महत्व पूर्ण पुस्तक 'अखंड ज्योति' के पाठकों को अर्ध मूल्य में अर्थात् दो रुपये के स्थान पर एक रुपये में ही मिलेगी। जो सज्जन लेना चाहें निम्न पते से मँगाले—

—दी इण्डियन स्प्रिचुअलिस्ट सोसाइटी,
४१ गोरधनदास बिल्डिंग, गिरगांव, बम्बई।

मानसिक सहज साधनों द्वारा शारीरिक और मानसिक रोगों को दूर करने एवं आध्यात्मिक विधि की शिक्षा देने के लिए "श्रीशक्ति ज्ञान प्रतिष्ठान" नामक केन्द्र खोला गया है। जो महानुभाव चाहें इससे लाभ उठा सकते हैं। वाहर के सज्जन उत्तर के लिए टिकट भेजें।

—एल. डी. शर्मा, श्री शक्ति ज्ञान प्रतिष्ठान,
खापर खेड़ा, सी० पी०।

करत करत अभ्यास के, जड़-मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें, सिल पर परत निसान॥

जो करना चाहोगे, वही हो जायगा, जो बनना चाहोगे वही बन जाओगे। दृढ़ प्रतिज्ञ होकर दोनों काल ठीक समय पर सन्ध्या अवश्य करो, भगवान तुमको आत्मिक बल अवश्य देंगे, जिससे तुमको सुख शान्ति प्राप्त होगी।

कलियुग समाप्त होरहा है

(श्री० पं० राधेश्याम जी मथुरा)

मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक ६७ से ७० में चारों युगों की आयु इस माफिक लिखी है, सतयुग ४८०० त्रेता ३६००, द्वापर २४००, और कलियुग १२०० वर्षों का है। प. मेघाजीने सोचा होगा कि कलियुग तो मुझ तक ही कई हजार वर्षों का व्यतीत हो चुका है, फिर यह १२०० वर्षों का ही नहीं हो सकता तब उनने श्री मद्भागवत स्कन्ध १२ अध्याय २ के इस श्लोक को देखा होगा—

दिव्याब्दानां सहस्रां ते चतुर्थेतु पुनः कृतम्।
भविष्यंति यदा नृणां येन आत्म प्रकाशकम् ॥३४

इसका अर्थ यह है:—

"चार हजार दिव्य वर्षों का तो पुनः (फिर) सतयुग आजायगा जो मनुष्यों के मन और आत्मा में प्रकाश करेगा।"

इस श्लोक में 'दिव्य' शब्द आता है मेधा तिथि ने इसका अर्थ देवता कर डाला और अभी तक प्रायः पं० लोग ऐसा ही अर्थ कर रहे हैं। चूँकि एक मनुष्य वर्ष के बराबर देवताओं का एक दिन होता है। यह विचार करके मेधा तिथि ने भ्रम से १२०० वर्षों का कलियुग जान कर और यह देव वर्ष समझ कर ३६० से गुणा कर ।४३२००० दिन बना दिये अतः कलियुग की अवधि इतनी लिख दीजो सर्वथा मिथ्या है। "दिव्य" शब्द का अर्थ देवता किसी भी तरह से नहीं हो सकता देखिये प्रमाण स्वरूप ऋग्वेद। १।१६४। ४६

यह शब्द मित्र निरुक्त देवत कण्ड ७।१८ में भी आता है वहाँ दिव्य शब्द की व्युत्पत्ति यह की है, "दिव्योदिविजो" अर्थात् जो दिवि में प्रगट होता है उसे दिव्य कहते हैं. द्यु को और निघंटुक काण्ड में दिन के १२ नाम लिखे है, उनमें द्यु शब्द भी दिन का वाचक है। अब दिव्य का अर्थ यह हुआ कि "दिन प्रगट होता है" और यह प्रत्यक्ष है, कि दिन में सूर्य ही प्रगट होता है, अतः दिव्य सूर्य का नाम है।

(२) सूर्य की उत्तर दक्षिण गति को ही दिव्य वर्ष कहते हैं। जिसकी गति ३६० संख्या की है, अर्थात् उत्तरायण के ६ मास और दक्षिणायन के ६ मास के ३६० दिन रात मनुष्यों के हुये इसी को दिव्य वर्ष कहते हैं।

अतः दिव्य देवताओं का वर्ष नहीं है इसलिये जो आगे ३६० से १२०० को गुणा कर आये हैं, वह गुणा न किया तो कलियुग की ठीक आयु १२०० वर्षों ही की रही।

कुल्लुकभट्ट ने अपनी मनुस्मृति में १।७१ की टीका करतेहुये मधा तिथि का तो पूरा खण्डन किया है कि "एतस्य श्लोकस्या द्वो पदे तनमनुषम् चतुर्युगं परिगणितं एतद्देवानां युग मुच्यते"।

अर्थात् यह चारों युग मनुष्यों के हैं इनके बराबर देवताओं का युग होता है। इसलिये सतयुग ४८०० वर्षों के और कलियुग १२०० वर्षों का ही हुआ

भागवत के श्लोक में जो ४००० वर्ष सतयुग के लिखे हैं, उसमें संध्या और संध्यांश के ८०० वर्ष मिलाने से सतयुग की पूरी आयु हुई इसलिये कलियुग की भी पूरी आयु १२०० वर्षों की हुई।

कल्कि पुराण ३।५।१२—में भी कलियुग की आयु १२०० वर्षों की है "क्योंकि उसमें यह लिखा है कि १२०० वर्षों के बराबर ४ युग होते हैं। जिनकी कि क्रम संख्या इस प्रकार है, ४, ३, २, १ (अथवा सं० ४८००, त्रे० ३६००, द्वा० २४०० और कलियुग १२०० वर्षों का है।

अतः अब कलियुग शीघ्र ही समाप्त होने वाला है।

'जब चन्द्रमा और सूर्य पुष्य नक्षत्र और बृहस्पति एक राशि में सम होकर आयेंगे तब सतयुग होताहै। भावार्थ यह है कि "जब चन्द्रमा और सूर्य और बृह० पुष्य नक्षत्र में एक राशि में सम आयेंगे तब तब कलियुग समाप्त होकर सतयुग आयेगा।"

भागवत् १२। २। २४

यह पूर्ण योग सं० २००० वि० श्रावण अमावस्या तदनुसार १ अगस्त सन् १९४३ ई० को आने वाला है उस समय "कलियुग समाप्त" होगा और पूर्ण चार पाद धर्म वाला 'सतयुग' प्रवेश करेगा।